भारती-पद्य-धारा

सम्पादक

डॉ० मुन्शीराम शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०, डी-लिट्
अध्यक्ष — हिन्दी-विभाग : डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर

बाबूराव जोशी, एम० ए०, साहित्यरत्न
प्रधानाध्यापक : हायर सेकेन्ड्री स्कूल
सोनकच्छ (देवास)

प्रकाशक :

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

दो शब्द

प्रस्तुत सङ्कलन में भक्ति-काव्य की विभिन्न धाराओं के प्रतिनिधि कवियों की रचनायें संग्रहीत की गई हैं। भक्तिकाल, हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जा सकता है, जिसमें आध्यात्मिक विचार तन्तुओं को भावात्मक शैली प्रदान की गई है। हिन्दी-काव्य-साहित्य की अभिवृद्धि में योग देने वाले अनेकानेक कवि हैं, किन्तु इस सकलन में हमने भक्ति-काव्य के कवियों की रस-माधुरी का रसास्वादन ही कराना अभिष्ट समझा है जिससे पाठक के मन में सात्विक और उदात्त भावों का प्रस्फुटन सम्भव हो सके।

हम आशा करते हैं कि इसके द्वारा विद्यार्थी-वर्ग लाभान्वित ही होगा।

—सम्पादक

अनुक्रमणिका

कबीर-वाणी

१ साखी-सार

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार ॥१॥

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक ॥२॥

हँसै न बोलै उनमनी, चचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥३॥

पीछै लागा जाय था, लोक वेद के साथि।
आगै थै सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥४॥

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणाँ, बहुरि न आँवौ हट्ट ॥५॥

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरध।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यू कूप पडत ॥६॥

सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिपही माँहै चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं बंसि बजाई फूक ॥७॥

गुर गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥८॥

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगे भीष ॥९॥

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अग ॥१०॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराइ ॥११॥

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥१२॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमे रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ॥१३॥

कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूनें घर का पाहुणाँ, ज्यूँ आया त्यूँ जाव ॥१४॥

अबर कुजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि पै गोविंद बीछुडे, तिनके कौण हवाल ॥१५॥

बिरहिनि ऊभी पथ सिरि, पथी बूझै धाइ।
एक सबद कह पीव का, कबर मिलेंगे आइ ॥१६॥

अदेसडा न भाजिसी, सदेसौ कहियाँ।
कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ ॥१७॥

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करक की, लिखी लिखि राम पठाउँ ॥१८॥

विरह् भुवगम तन बसै, मत्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥१६॥

इहु तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥२०॥

हँसि हँसि कत न पाइये, जिन पाया तिनि रोइ।
जे हाँसे ही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागिनि कोइ ॥२१॥

विरह् जलाई मैं जलौं, जलती जल-हरि जाऊँ।
मो देख्यां जल-हरि जलै, सतौं कहाँ बुझाऊँ ॥२२॥

सुखिया सब ससार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥२३॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिये कू सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥२४॥

अतरि कँवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ।
मन भँवरा तहाँ लुबधिया, जाणैगा जन कोइ ॥२५॥

आया था ससार मैं, देषण कौं वहु रूप।
कहै कबीरा सत हौ, पड़ि गया नजरि अनूप ॥२६॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि ॥२७॥

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अविगति अतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान ॥२८॥

आकासे मुखि, औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि ॥२९॥

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुर्लभ है, माँगै सीस कलाल ॥३०॥

सबै रसाइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं सचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥३१॥

२—पद संग्रह

(१)

चदा झलकै यहि घट माहीं। अधी आँखन सूझै नाहीं ॥
यहि घट चदा यहि घट सूर। यहि घट गाजै अनहद तूर ॥
यहि घट बाझै तबल-निसान। बहिरा शब्द सुनै नहिं कान ॥
जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज एको नहिं सरै ॥
जब मेरी ममता मर जाय। तब लगप्रभु काज सँवारै आय ॥
ज्ञान के कारन करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय ॥
फल कारन फूलै वनराय। फल लागे पर फूल सुखाय ॥
मृगा पास कस्तूरी वास। आप न खोजै खोजै घास ॥

(२)

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जम फन्द है।
कहन-सुनन कछु नाहिं, नही कछु करन है ॥
जीते जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है ॥
जोगी पडे वियोग, कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढत खजूर है ॥
बाम्हन दिच्छा देता घर घर घालि है।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालि है ॥
ऐसन साहब कबीर सलोना आप है।
नही जोग नही जाप पुन्न नही पाप है ॥

(३)

साधो, सो सतगुरु मोहि भावै।
सत्त प्रेम का भर भर प्याला, आप पीवै मोहि प्यावै।
परदा दूर करै आँखिन का, ब्रह्म दरस दिखलावै।
जिस दरसन मे सब लोक दरसै, अनहद सब्द सुनावै।
एकहि सब सुख-दुख दिखलावै, सब्द मे सुरत समावै।
कहै कबीर ताको भय नाही, निर्भय पद परसावै।

(४)

जिससे रहनि अपार जगत मे, सो प्रीतम मुझे पियारा हो।
जैसे पुरइनि रहि जल-भीतर, जलहि मे करत पसारा हो।
बाके पानी पत्र न लागै, ढलकि चलै जस पारा हो।
जैसे सती चढै अगिन पर, प्रेम-वचन ना टारा हो।
आप जरै औरनि को जारै, राखै प्रेम-मरजादा हो।
भवसागर इक नदी अगम है, अहद अगाह धारा हो।
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, बिरले उतरे पारा हो।

(५)

या तरिवर मे एक पखेरू, भोग सरस वह डोलै रे।
बाकी सच लखै नहि कोई, कौन भावसो बोलै रे।
दुर्म्म-डार तहँ अति घन छाया, पछी बसेरा लेई रे।
आवै साँझ उडि जाय सबेरा, मरम न काहू देई रे।
सो पछी मोहि कोइ न बतावै, जो बोलै घट माँही रे।
परवन-बरन रूप नाहि रेखा, बैठा प्रेम के छाँही रे।
अगप अपार निरन्तर बासा, आवत-जात न दीसा रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह कुछ अगम कहानी रे।
या पछी मे कौन ठौर है, बूझो पडित ज्ञानी रे।

(६)

मन मस्त हुआ तब क्यो बोले ।

हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार वाको क्यो खोले ।
हलकी थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्या तोले ।
सुरत-कलारी भई मतवारी मदवा पी गई बिन तोले ।।
हसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यो डोले ।
तेरा साहब है घरमाही, बाहर नैना क्यो खोले ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल ओले]।।

(७)

साधो, सहजै काया साधो ।

जैसे बटका बीज ताहिमे पत्र-फूल-फल छाया ।
काया मद्धे बीज बिराजे, बीजा मद्धे काया ।
अगिन-पवन-पानी-पिरथी-नभ, ता-बिन मिलै नाही ।
काजी पडित करो निरनय को न आपा माही ।
जल-भर- कुं ज जलै बिच धरिया, बाहर-भीतर सोई ।
उनको नाम कहन को नाही, दूजा धोखा होई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्य-शब्द निज सारा ।
आपा-मद्धे आपै बोलै, आपै सिरजनहारा ।

(८)

तरवर एक मूल बिन ठाढा, बिन फूले फल लागै ।
साखा-पत्र कछू नहिं ताके, सकल कमल-दल गाजै ।
चढ तरवर दो पछी बोले, एक गुरू एक चेला ।
चेला रहा रस चुन खाया, गुरू निरन्तर खेला ।।
पछी के खोज अगम परगट, कहै कबीर बडी भारी ।
सब ही मूरत बीज अमूरत, मूरत की बलिहारी ।।

(९)

चल हसा वा देस जहँ पिया बसो चितचोर।
सुरत सोहगिन है पनिहारिन, भरै ठाढ बिन डोर॥
वहि देसवाँ बादर ना उमडै रिमझिम बरसै मेह।
चौवारे मे बैठ रहो ना, जा भीजहु निर्देह॥
वहि देसवा मे नित्त पूर्निमा, कवहुँ न होय अँधेर।
एक सुरजकै कवन बतावैं, कोटिन सुरज उँजेर॥

(१०)

गगनघटा घहरानी साधो, गगनघटा घहरानी।
पूरब दिससे उठी है बदरिया, रिमझिम बरसत पानी।
आपन आपन मेड सम्हारो, बह्यो जात यह पानी।
सुरत निरतका बेल नहायन, करै खेत निर्वानी।
धान काट मार घर आवै, सोई कुसल किसानी।
दोनो थार बराबर परसै, जेवै मुनि और ज्ञानी॥

(११)

चरखा चलै सुरत विरहिन का।
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भाँवरी होत गगन मे, पीढा ज्ञान-रतन का।
मिहीन सूत विरहिन कातै, माँझा प्रेम-भगति का।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, माला गूँथो दिन रैन का।
पिया मोर ऐहैं पगा रखिहै, आँसू भेंट देहौं नैन का॥

(१२)

को बीनै प्रेम लागो री माई को बीनै।
राम-रसायण-माते री माई को बीनै।

पाई पाई तूं पतिहाई, पाईकी तुरियाँ बचो खाई
री माई को बीनै ।।

ऐसे पाई पर विथुराई, त्यूं रस आनि वनायौ
री माई को बीनै ।।

नाचै ताना नाचै बाना, नाचै कूंच पुराना
री माई को बीनै ।।

करगहि बैठि कबीरा नाचै चूहै काट्या ताना
री माई को बीनै ।।

(१३)

अगिनी जु लागी नीरमे, कन्दू जलिया भारि।
उतर-दखिनके पंडिता, रहे विचार विचारि ।।१।।
गुरु दाझा चेला जला, विरहा लागी आगि।
तिणका वपुरा ऊबरिया, गलि पूरेके लागि ।।२।।
अहेडी दौं लाइया, मिरग पुकारे रोई।
जा वनमे क्रीडा करी, दाझत है वन सोई ।।३।।
पाणी माहैं परजली भई अप्रबल आगि।
वहती सलिता रह गई, मच्छ रहे जल त्यागि ।।४।।
समैंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मच्छी रूखा चढि गई ।।५।।

(१४)

अवधू, ऐसा ग्यान बिचार।

भेरे चढे सु अधधर डूबै, निराधार भये पार ॥
अघर चले सो नगरि पहूँते बाट चले ते लूटे।
एक जेवडी सब लपटानें के बांधे के छूटे ॥
मन्दिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूपा।
सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूपा ॥
बिन नैननके सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यह जग देख्या धंधा ॥

(१५)

राम गुन बेलडी रे अवधू गोरपनाथि जाणी।
नाति सरूप न छाया जाके, बिरध करै बिन पाणी ॥
बेलडिया द्वै अणी पहूँती, गगन पहूँती सैली।
सहज बेलि जब फूलण लागी, डाली कूपल मेल्ही ॥
मन-कु जर जाइ बाडी बिलम्या, सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन पयम्प्या, बाडी पाणी मेल्ही ॥
काटत बेली कूपले मेल्ही, सीचताडी कुमिलाणी।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरन्तर जाणी।

(१६)

राम तेरी माया दुंद मचावै।
गति-मति वाकी समझि परै नहिं, सुर-नर मुनिहिं नचावै।
का सेमरके साखा बढये, फूल अनूपम बानी।
केतिक चातक लागि रहे हैं, चाखत सूवा उडानी ॥

कहा खजूर बडाई तेरी, फल कोई नही पावै ।
ग्रीखम रित अब आइ तुलानी, छाया काम न आवै ।।
अपना चतुर औरको सिखवै, कामिनि-कनक सयानी ।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, राम-चरण रति मानी ॥

(१७)

मैं कासें बूझौं अपने पिया की बात री ।
जान सुजान प्रान-प्रिय पिय बिन, सबै बटाऊ जात री ।
आसा नदी अगाध कुमति बहै, रोकि काहू पै न जात री ।
काम-क्रोध दोउ भये करारे, पडे विषय-रस मात री ।
ये पाँचो अपमानके सगी, सुमिरनको अलसात री ।
कहै कबीर बिछुरि नहिं मिलिहौ, ज्यौं तरवर बिन पात री ।

(१८)

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदन ।
आरत साजके चली है सुहागिन पिय अपने को ढूँढन ।
काहेकी तोरी बनी है चुनरिया काहेके लगे चारो फूँदन ।
पाँच तत्तकी बनी है चुनरिया नामके लागे फूँदन ।
चढिगे महल खुल गई रे किवरिया दास कबीर लागे झूलन ॥

(१९)

पिया मेरा जागे मैं कैसे सोई री ।
पाँच सखी मेरे सगकी सहेली,
उन रँग रँगी पिया रग न मिली री ॥
सास सयानी ननद देवरानी,

उन डर डरी पिय सार न जानी री ॥
द्वादस ऊपर सेज बिछानी,
चढ न सकौं मारी लाज लजानी री ॥
रात दिवस मोहिं कूका मारे,
मैं न सुनी रचि नहिं सँग जानी री ॥
कहै कबीर सुनु सखी सयानी,
बिन सतगुरु पिया मिले न मिलानी री ॥

(२०)

यह जग अंधा मैं केहि समुझावो ।
इक-दुई हो उन्हे समुझावो सब ही भुलाना पेटके धधा ।
पानी के घोडा पवन असवरवा ढरकि परै जस ओसके बुंदा ।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पडिगा फंदा ।
घरकी वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारिके ढूँढत अंधा ॥
लागी आग सकल वन जरिगा बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा ।
कहै कबीर सुनो भई साधो इकदिन जाय लंगोटी झार बंदा ॥

(२१)

संतो बोले ते जग मारै ।
अनबोले ते कैसेक बनिहै, सब्दहिं कोई न बिचारै ॥
पहिले जनम पूत को भयऊ, बाप जनमिया पाछे ।
बाप पूत की एकै माया, ई अचरज को काछे ॥
दुंदुर राजा टीका बैठे, विषहर करै खवासी ।
स्वान बापुरो धरनि ढाँकनो, बिल्लो घर की दासी ॥
कागदकार कारकुन आगे, बैल करै पटवारी ।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, भैंसे न्याव निवारी ॥

सूर-सुधा

विनय-पद

(१)

अबकें माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भवअंबुनिधि मे कृपासिंधु मुरारी ॥
नीर अति गभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिये जात अगाध जल मे गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सेवार ॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहि चितवन देत तिय-सुत नाम-नौका ओर ॥
थक्यो बीच बेहाल विह्वल सुनहु करुनामूल।
स्याम ! भुज गहि काढि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल ॥

(२)

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया की कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल ॥

कोटिक कला काछि दिखराई, जलथल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल॥

(३)

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यो गू गेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

(४)

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा नाथ मनोरथ-पूरन सुखनिधान जाकी मौज धनी॥
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चार पदारथ देत छनी।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक मो बपुरे की कहा गनी॥
कहौ कृपन की माया कितनी करत फिरत अपनी अपनी।
खाइ न सकै खरच नहिं जानै ज्यो भुअग सिर रहत मनी॥
आनँद मगन रामगुन गावैं दुख सताप की काटि तनी।
'सूर' कहत जे भजत राम को तिन सो हरि सो सदा बनी॥

(५)

जनम सिरानो अटके अटके।
सुत सपति गृह राज—मान को फिरो अनत ही भटके॥
कठिन जवनिका रची मोह की तोरी जाय न चटके।
ना हरिभजन न तृपिति विषय की रह्यो बीच ही लटके॥

सब जजाल सु इन्द्रजाल सम ज्यों बाजीगर नटके।
'सूरदास' सो न सोभियत पिय विहून घन मटके॥

(६)

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवहिं ज्यों प्रानी बिनु प्रान॥
जैसे मगन नाद वन सारँग बधै बधिक तनु बान।
ज्यों चितवै ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान।
जैसे कमल होत परफुल्लित देखत दरसन भान।
'सूरदास' प्रभु हरिगुन मीठे नित प्रति सुनियत कान॥

(७)

प्रभु हौं सब पतितन को राजा।
पर निन्दा मुख पूरि रह्यो, जग यह निसान नित बाजा॥
तृसना देस रु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड्ग हमारे।
मन्त्री काम कुमत दैवे को, क्रोध रहत प्रतिहारे।
गज अहँकार चढयो दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरी ऐसो हौ मैं ईस॥
मोह मदै बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार।
'सूर' पाप को गढ दृढ कीने मुहकम लाइ किवार॥

(८)

बिनती सुनो दीन की चित्त दै कैसे तव गुन गावै।
माया नटिनि लकुट कर लीने कोटिक नाच नचावै॥
लोभ लागि लै डोलत दरदर नाना स्वाँग करावै।
तुमसो कपट करावत प्रभु जी मेरी बुद्धि भ्रमावै॥

मन अभिलाष तरंगनि करि करि मिथ्या निसा जगावै ।
सोवल सपने मे ज्यो सम्पति त्यो दिखाय बौरावै ।।
महामोहनी मोह आलमा मन अघ माहिं लगावै ।
ज्यो दूती पर बधू भोरि कै लै पर पुरूष मिलावै ।।
मेरे तो तुम ही पति तुम गति तुम समान को पावै ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हारी कृपा विनु को मो दुखन सिरावै ।।

(९)

माधव जू ! यह मेरी इक गाई ।
अब आजु तें आप आगे दई लै आइये चराई ।।
है अति हरहाई हटकत हू बहुत अमारग जाति ।
फिरत वेद बन ऊख उखारत सब दिन अरू सब राति ।।
हित कै मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माँह ।
सुख सोऊँ सुनि वचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह ।।
निधरक रहों 'सूर' के स्वामी जन्म न पाऊँ फेरि ।
मैं ममता रुचि सों जदुराई पहिले लेऊ निवेरि ।।

(१०)

माधव ! मन मरजाद तजी ।
ज्यो गज मत्त जानि, हरि तुमसो बात विचारि सजी ।।
माथे नही महावत सतगुरू अकुस ग्यान हुटयो ।
धावै अघ अवनी अति आतुर साँकर सुगम छुटयो ।।
इन्द्री जूथ सग लिये विहरत, तृस्ना कानन माहे ।
क्रोध सोच जल सो रति मानी काम भच्छ हित जाहे ।।
और अधार नाहिं कछु सकुचत, भ्रम गहि गुहा रहै ।
'सूर' स्याम केहरि, करुनामय कब नहिं बिरद गहै ।।

(११)

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो॥
इक लोहा पूजा मे राखत इक घर बधिक परो।
यह दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलिकै दोउ एकबरन भए सुरसरि नाम परो॥
एक जीव एक ब्रह्म कहावत 'सूरस्याम' झगरो।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो॥

(१२)

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैननि की छवि यहै, चतुर सोइ जो मुकुन्द दरसन हित धावै॥
निर्मल चित सो, सोई साँचो, कृस्न बिना जिहि अवरु न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई हरिजस निति प्रति स्रवननि प्यावै॥
कर तेई जु स्याम को सेवै चरननि चलि बृन्दाबन जावै।
'सूरदास' है बलि बलि ताकी जो सन्तन सों प्रीति बढावै॥

बाल-लीला

(१)

हौं एक बात नई सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई ॥
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल मे रतन भूमि सब छाई ॥
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई।
'सूरदास' स्वामी सुख-सागर सुन्दर स्याम कन्हाई ॥

(२)

आजु नन्द के द्वारे भीर।
एक आवत एक जात बिदा होइ एक ठाढे मन्दिर के तीर ॥
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोऊ पहिरत कचुक चीर।
एकन को दै दान समरपत एकन कौ पहिरावत चीर ॥
एकन को भूषन पाटबर एकन को जु देत नग हीर ॥
एकन को पुहुपन की माला एकन को चन्दन घसि बीर ॥
एकन को तुलसी की माला एकन को राखत दै धीर।
'सूरस्याम' घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर ॥

(३)

जसोदा हरि पालने झुलावै।
लहरावै दुलराई मल्हावै जोइ सोई कुछ गावै ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगिसी आवै तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।

सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाई उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै ॥

(४)

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।
नन्द घरनि गावति हलरावति पलना पर किलकत हरि खेलत ॥
जो चरनारबिंद श्रीभूषन उतरे नेकु न टारति।
देखो धौं का रसु चरनन में मुख मेलत करि आरति ॥
जा चरनारबिंद के रस को सुर नर करत बिवाद।
यह रस तो है मोको दुरलभ ताते लेत सवाद ॥
उछलत सिंधु, धराधर काँप्यो, कमठपीठि अकुलाइ।
सेस सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ ॥
बढ्यो बृच्छ बर, सुर अकुलाने गगन भयो उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात ॥
करुना करी छाँडि पग दीनो जानि सुरन मन सेस।
'सूरदास' प्रभु असुर निकन्दन दुष्टन के उर गस ॥

(५)

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै ॥
कब द्वै दन्त दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै।
कब नन्दहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहि ररै ॥
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने कर सों मुखहि भरै ॥
कब हँसि बात कहैगो मोसों छबि देखत दुख दूर टरै।

स्याम अकेले आँगन छांडे आपु गई कछु काज धरै ।।
एहि अन्तर अँधवाइ उठी इक गरजत गगन सहित थहरै ।
'सूरदास' ब्रज लोग सुनत धुनि जो जहँ तहँ सब अतिहि डरै ।।

(६)

आजु भोर तमचुर की रोल ।
गोकुल मे आनन्द होत है मगल धुनि महराने टोल ।।
फूले फिरत नन्द अति सुख भयो हरषि मँगावत फूल तमोल ।
फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल ।।
तनक बदन दो, तनक तनक कर, तनक चरन पोछत पटझोल ।
कान्ह गले सोहै कँठमाला, अक अभूषन अँगुरिन गोल ।।
सिर चोतनी दिठौना दीने आँखि आँजि पहिराइ निचोल ।
स्याम करत माता सो झगरो अटपटात कलबल कर बोल ।।
दोउ कपोल गहि कै मुख चुबति बरष दिवस कहि करत कलोल ।
'सूर' स्याम ब्रज जन-मन-मोहन बरष गाठि को डोरा खोल ।।

(७)

कहाँ लौ बरनो सुन्दरताई ।
खेलत कुँवर कनक आँगन मे नैन निरखि छबि आई ।।
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुबिधि सुरँग बनाई ।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुप चढाई ।।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ।
मानो प्रगट कज पर मजुल अलि अवली फिरि आई ।।
नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई ।
सनि गुरु-असुर देव गुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई ।।
दूध दन्त दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई ।

किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनौ घन मे बिज्जु छुवाई ।।
खडित बचन देत पूरन सुख अलप जलप जलपाई ।
घुटुरन चलत रेनु तनु मंडित 'सूरदास' बलिजाई ।।

(८)

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी ।
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नन्दघरनी ।।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी ।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न वरनी ।।
ब्रज जुवती सब देख थकित भईं सुन्दरता की सरनी ।
चिरजीवो जसुदा को नन्दन 'सूरदास' को तरनी ।।

(९)

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
पिता नन्द सो बाबा बाबा अरु हलधर सों भैया ।।
ऊँचे चढि चढि कहत जसोदा लै लै नाम कन्हैया ।
दूरि कहूँ जिनि जाहु लला रे मारैगी काहू की गैया ।।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया ।
मनि खमन प्रतिबिंब बिलोकत नचत कुवर निज पैया ।।
नन्द जसोदाजी के उर तें इह छबि अनत न जइया ।
'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस को चरनन की बलि गइया ।।

(१०)

ठाटी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिये चन्दा दिखरावत ।
रोवत कत बलि जाउ तुम्हारी देखौ धौं भरि नैन जुडावत ।।
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लैलै जु बतावत ।

मीठो लगत किधौं यह खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत ।।
मनही मन हरि बुद्धि करत है माता को कहि ताहि मँगावत ।
लागी भूख चन्द मैं खैहौं देह देहु रिस करि विरुझावत ।।
जसुमति कहत कहा मैं कीनो रोवत मोहन अति दुख पावत ।
'सूर' स्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उडत लखावत ।।

(११)

प्रात समय उठि सोवत हरि को बदन उघारयो नन्द ।
रहि न सकत, देखन को आतुर नैन निसा के द्वन्द ।।
स्वच्छ सेज मैं तें मुख निकसत गयो तिमिरि मिटि मन्द ।
मानौ मथि पय-सिंधु फेन फटि दरस दिखायो चन्द ।।
धायो चतुर चकोर 'सुर' सुनि सब सखि सखा सुछन्द ।
रही न सुधिहु सरीर धीर मति पिवत किरन मकरन्द ।।

(१२)

जागिये व्रजराज कुंवर कमल कुसुम फूले ।
कुमुद वृन्द सकुचित भए भृंग लता भूले ।।
तमचुर खग रौर सुनहु बोलत वनराई ।
राँभति गौ खरकन मे बछरा हित धाई ।।
बिधु मलीन रविप्रकाश गावत नर-नारी ।
'सूर' स्याम प्रात उठौ अम्बुज कर धारी ।।

(१३)

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसो कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ।।
कहा कहौ एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ।।

गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को घूत।
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

(१४)

हरि को बाल रूप अनूप।
निरखि रहिं ब्रजनारि इकटक अङ्ग अङ्ग प्रति रूप॥
बिथुरि अलकैं रहिं बदन पर, बिनहिं पवन सुभाइ।
देखि खजन चद के बस करत मधु सहाइ॥
सुलछ लोचन, चारु नासा परम रुचिर बनाइ।
जुगल खजन लरत लखि सुक बीच कियो बनाइ॥
अरुन अधरनि दसन भाये कहौं उपमा थोरि।
लालपुट बिच मोति मानौं धरे बदन बोरि॥
सुभग बाल-मकुन्द को छबि बरनि कापै जाइ।
भृकुटि पर मसि-बिन्दु सोहै सकै 'सूर' न गाइ॥

(१५)

बोलि लेहु हलधर भैया को।
मेरे आगे खेल करौ कछु नैननि सुख दीजै मैयाको॥
मैं मूँदो हरि आँखि तुम्हारी बालक रहैं लुकाई।
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलो आँखि-मुँदाई॥
हलधर कहै आँखि को मूँदे हरि कह्यो जननि जसोदा।
'सूर' स्याम लिये जननि खेलावति हरि हलधर मन मोदा॥

(१६)

सखा सहित गए माख चोरी ।
देख्यो स्याम गवाच्छ पथ ह्वै गोपी एक मथति दधि भोरी ॥
हेरि मथानि धरी माट पै माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी माँगन हरि हू पाई घात ।।
पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खाई।
छूँछी छाँडि मटुकिया दधि की हँसे सब बाहिर आई ।।
आइ गई कर लिये मटुकिया घरते निकरे ग्वाल।
माखन कर दधि मुख लपटाने देखि रही नँदलाल ।।
भुज गहि लियो कान्ह को, बालक भागे ब्रज की खोरि ।
'सूरदास' प्रभु ठगि रही ग्वालिनि मनु हरि लियो अँजोरि ॥

(१७)

गोपाल दुरे है माखन खात ।
देखि सखी सोभा जु बनी है स्याम मनोरह गात ।।
उठि अवलोकि ओट ठाढे ह्वै जिहि बिधि हौ लखि लेत ।
चकृत बदन चहूँ दिसि चितवत और सखन को देत ॥
सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार ।
मनु सरोज विधु-बैर बचि करि लिए मिलत उपहार ।।
गिरि-गिरि परत वदन ते उर पर द्वै-द्वै दधिसुत विंदु ।
मानहु सुभग सुधाकन वरषत लखि गगनागन इंदु ।।
बालविनोद विलोकि 'सूर' प्रभु सिथिल भई ब्रजनारि ।
फुरै न वचन, बरजिबे कारन रही विचारि-बिचारि ॥

(१८)

चोरी करत कान्ह धरि पाये ।
निसि बासर मोहि बहुत सतायो अब हरि हाथहि आये ॥

माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तो फँद परे हौ लालन तुम्हें भले मैं चीन्ही॥
दोउ भुज पकरि कह्यो कित जैहौ माखन लेउँ मँगाई।
तेरी सौं मैं नैकु न चाख्यो सखा गये सब खाई॥
मुख तन चितै बिहँसि हँसि दीनो रिस तब गई बुझाई।
लियो उर लाइ ग्वालिनी हरि को 'सूरदास' बलि जाई॥

(१९)

देखो माई या बालक की बात।
बन उपवन सरिता सब मोहे देखत स्यामल गात॥
मारग चलत अनीति करत हरि हठिकै माखन खात।
पीताम्बर लै सिरते ओढ़त अचल दै मुसुकात॥
तेरी सौं कहा कहौं जसोदा उरहन देत लजात।
जब हरि आवत तेरे आगे सकुचि तनक ह्वै जात॥
कौन कौन गुन कहौं स्याम के नेक न काहु डरात।
'सूर' स्याम मुख निरखि जसोदा, कहति कहा यह बात॥

(२०)

बाँधौं आजु कौन तोहिं छोरै।
बहुल लँगरई कीनी मोसो भुज गहि रजु ऊखल सो जोरै॥
जननि अति रिसि जानि बँधायो चितै बदन लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रजजुवती उठि धाई कहत कान्ह अब क्यों नहिं चोरै॥
ऊखल सो गहि बाँधि जसोदा मारन को साँटी करो तरे।
साँटी लखि ग्वालिन पछतानी बिकल भई जहँ तहँ मुख मोरै॥
सुनहु महरि ऐसी न बूझिये सुत बाँधत माखन दधि थोरै।
'सूर' स्याम हमें बहुत सतायो, चूक परी हमते यहि भोरै॥

(२१)

कुँवर जल लोचन भरि भरि लेत।
बालक वदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करत अचेत।
छोरि कमर तें दुसह दाँवरी डारि कठिन कर बेत।
कहि तो को कैसे आवतु है सिसु पर तामस एत॥
मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत।
मनु ससि स्रवत सुधानिधि मोति उडुगन अवलि समेत॥
सरबसु तौ न्यवछावरि कीजै 'सूर' स्याम के हेत।
ना जानौं केहि हेतु प्रगट भये इहि ब्रज नदनिकेत॥

(२२)

बन बन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर सँग है वहु गोप-बालक-सेनु॥
तृषित भईं सब जानि मोहन सखन टेरत वेनु।
बोलि ल्याओ सुरभि गन सब चलौ जमुन जल देनु॥
सुनत ही सब हाँकि ल्याये गाइ करि इकठैन।
हेरि दै दै ग्वाल बालक किये जमुन-तट गैन॥
रचि बकासुर रूप माया रह्यो छल करि आइ।
चचु यक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ॥
मनहिं मन तब कृष्ण जान्यो बका-सुर बिहग।
चोंच फारि बिदारि डारो पलक मे करो भग॥

(२३)

देखो भाई सुन्दरता को सागर।
बुधि बिवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥

तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि, कटि पट-पीत तरग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अँग॥
मीन नैन मकराकृत कुडल, भुजबल सुभग भुजग।
मुकुत-माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये सग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नखचद।
मनु अडोल वारिध मैं बिंबित राका उडगम बृद॥
बदन चन्द्र-मडल की सोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सुरूप सकल गोपी जन रही निहारी निहारी।
तदपि 'सूर' तरि सकी न सोभा रही प्रेम पचि हारि॥

(२४)

नद नँदन मुख देखो माई।
अङ्ग अङ्ग छवि मनहु उए रवि, ससि अरु समर लजाई॥
खजन मीन कुरग भृङ्ग वारिज पर अति रुचि पाई।
श्रुतिमडल कुडल विवि मकर सु बिलसत मदन सहाई॥
कठ कपोत कीर विद्रुम पर दारिम कननि चुनाई।
दुइ सारगवाहन पर मुरली आई देत दोहाई॥
मोहे थिर चर विटप विहङ्गम व्योम विमान थकाई।
कुसुमाजुलि बरषत सुर ऊपर 'सूरदास' बलि जाई॥

(२५)

सुन्दर मुख की बलि बलि जाऊँ।
लावनिनिधि गुननिधि सोभानिधि निरखि निरखि जीवत सब गाऊँ॥
अङ्ग अङ्ग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावैं ठाऊँ।
तार्पै मृदु मुसकानि मनोहर न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ॥

नैन सैन दै दै जब हेरत तापै हौं बिन मोल बिकाऊँ।
'सूरदास' प्रभु मन मोहन छबि यह सोभा उपमा नहिं पाऊँ॥

(२६)

देखु सखी मोहन मन चोरत।
नैन कटाच्छ बिलोकनि मधुरी सुभग भृकुटि बिबि मोरत॥
चदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अति सुखदाई।
मानहु अर्द्धचद्रतट अहिनी सुधा चोरावन आई॥
मलयज माल भृकुटि की रेखा कहि उपमा एक आवत।
मनो एक सग गङ्ग जमुन नभ तिरछी धार बहावत॥
भृकुटि चारु निरखि ब्रज-सुन्दरि यह मन करत बिचार।
'सूरदास' प्रभु सोभा सागर कोउ न पावत पार॥

(२७)

देखि री हरि के चचल नैन।
खजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन॥
राजिवदल, इन्द्रीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे बिकसत, ये बिकसत दिन राति॥
अरुन सेत सिति झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गङ्गा जमुना मिलि सगम कीन्हो आइ॥
अवलोकनि जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
सूर' स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात॥

(२८)

देखो री देखि कुण्डल लोल।
चारु श्रवननि अहित कीन्हो झलक ललित कपोल॥

बदन मडन सुधासरवर निरखि मन भयो भोर।
मकर क्रीडत गुप्त परगट, रूप जल झकझोर॥
नैन मीन, भुयगिनी भ्रुव, नासिका थल बीच।
सरस मृगमद तिलक सोभा लसति है जनु कीच॥
मुख विकास सरोज मानहु जुवति लोचन भृग।
बिथुरि अलकै परी मानहु लहरि लेत तरंग॥
स्याम तनु छबि अमृत पूरन रच्यो काम तडाग।
'सूर' प्रभु की निरखि सोभा ब्रज तरुनि बड भाग॥

(२८)

स्याम भुजा की सुन्दरताई।
चन्दन खोरि अनूपम राजत सो छबि कही न जाई॥
बडे बिसाल जान लौ परसत एक उपमा मन आई।
मनो भुजग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो भुलाई॥
रतन जटित पहुँची कर राजत अँगुरी मुँदरी भारी।
'सूर' मनो फनि सिर मनि सोभत फनफन की छबि न्यारी॥

(३०)

ब्रज जुवति हरि चरन मनावैं।
जे पद कमल महा मुनिदुर्लभ ते सपनेहु नही पावै॥
तनु त्रिभग, जुग जानु, एक पग ठाढे, एक दरसायो।
अकुश कुलिस ब्रज ध्वज परगट तरुनी मन भरमायो॥
वह छबि देखि रही एकटक ही यह मन करति विचारि।
'सूरदास' मनो अरुन कमल पर सुषमा करति बिहार॥

(३१)

मानो माई घन घन अंतर दामिनि ।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रज भामिनि ।।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि ।
सुन्दर ससि गुनरूप राग विधि अंग अंग अभिरामिनि ।।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइसो मुदित भई ब्रजभामिनि ।
रूप-निधान स्याम सुदरघन आनन्द-मन-विश्रामिनि ।।
खजन मीन मराल हरन छवि, भरी भेद गजगामिनि ।
को गति गुनही 'सूर' स्याम सग, का बिमोह्यो कामिनि ।।

(३२)

नट वर वेप काछे स्याम ।
पद कमल नख इदु सोभा घ्यान पूरन काम ।।
जानु जघ सुघट निकाई नाहिँ रभा तूल ।
पीत पट काछनी मानहु जलज-केसरि झूल ।।
कनक छुद्रावली पगति नाभि कटि के भीर ।
मनहुँ हस रसाल पगति रहे हैं हृद तीर ।।
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार ।
मनहुँ गगा बीच जमुना चली मिलि कै धार ।।
बाहुदड बिसाल तट दोउ अङ्ग चदन रेन ।
तीर तरु बनमाल की छवि ब्रज जुवति सुख देन ।।
चिवुक पर अधरन दसन दुति बिंब बीजु लजाइ ।
नासिका सुक, नैन खजन, कहत कवि सरमाइ ।।
स्रवन कुडल कोटि रवि छवि भृकुटि काम कोदड ।
'सूर' प्रभु है नीप के तर सिर धरे सीखड ।।

(३३)

द्वै लोचन तुम्हरे द्वै मेरे।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्हो मैं भई मगन एक अंग हेरे॥
अपनो अपनो भाग्य सखी री तुम तन्मय मैं कहूँ न नेरे।
जो जो बुनिये सो पुनि लुनिये और नहीं त्रिभुवन भट भेरे॥
स्याम रूप अवगाह सिंधु ते पार होत चढ़ि डोगन केरे।
'सूरदास' तैसे ये लोचन कृपा जहाज बिना को पैरे॥

(३४)

बिधातहि चूक परी मैं जानी।
आजु गोविंदहिं देखि देखि हौं इहै समुझी पछतानी॥
रचि पचि सोचि सँवारि सकल अँग चतुर चतुरई ठानी।
दीठि न दई रोम रोमनि प्रति इतनिहिं कला नसानी॥
कहा करौं अति सुख, दुई नैना उमँगि चलत भरि पानी।
'सूर' सुमेर समाइ कहाँ धौं बुधि बासनी पुरानी॥

(३५)

बूझत स्याम कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नाहिं कहूँ ब्रज-खोरी ?
काहे को हम ब्रज-तन आवत, खेलति रहति आपनी पोरी।
सुनति रहति स्रवननि नंद-ढोटा करत रहत दधि-माखन चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैं हैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि बातनि भुरई राधिका भोरी॥

(३६)

खेलन के मिस कुँवरि राधिका नंद—महर के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि बोलि,—घर, हो कुँवर कन्हाई हो ?
सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई हो।
माता सो कछु करत कलह हरि, सो डारी बिसराई हो॥
मैया री तू इनको चीन्हति, बारंबार बताई हो।
जमुना–तीर कालिह मैं भूल्यो, बाँह पकरि लै आई हो॥
आवत यहाँ–तोहि सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई हो।
'सूर' स्याम ऐसे गुन–आगर, नागरि बहुत रिझाई हो॥

यशोदा विलाप

(१)

मेरो, माई, निधनी को धन माधो ।
वारवार निरखि सुख मानत, तजत नहीं पल आधो ।।
छिन छिन परसत, अंग मिलावत, प्रेम प्रगट ह्वै लाधो ।
निस-दिन चंद्र चकोर को छवि, मिटै न दरस की साधो ।।
करिहै कहा अक्रूर हमारा, .दैहै प्राण अगाधो ।
सूर स्यामघन है। नहिं पठवैं, अबहि कंस किन बाँधो ।।

(२)

नंद व्रज लीजै ठौंकि बजाइ ।
देहु बिदा, मिलि जाहिं मधुपुरी, जहँ गोकुल के राइ ।
नैनन पथ गयो क्यों सूझ्यो उलटि दियो जब पाइ ।।
भूमि मसान विदित ए गोकुल, मनहु धाइ धाइ खाइ ।
सूरदास, प्रभु पास जाहिं हम, देखैं रूप अघाइ ।।

(३)

संदेसो देवकी सों कहियो ।
हौं तो धाइ तिहारे सुत की मया करति ही रहियो ।।
जदपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रातहि उठत तिहारे कान्ह को माखन-रोटी भावै ।।
तेल, उबटनो अरु तातो जल, ताहि देखि भजि जाते ।
जोइ २ मागत सोइ २ देती, क्रम-क्रम करि करि न्हाते ।।
सूर, पथिक सुनि, मोहि रैन-दिन बढ्यो रहत उर सोच ।
मेरो अलक-लडैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच ।।

(४)

कह्यो कान्ह सुनि जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चारि-पाँच मे हम हलधर दोउ भैया॥
मुरली, बेंत, बिखान देखियो सींगी बेर सबेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो॥
जा दिन तें तुमसों बिछुरे हम, कोउ न कहत कन्हैया।
भोरहि नाहिं कलेऊ कीन्हो, साँझ न पय पियो धैया॥
कहत न बन्यो सँदेसो मौपै—जननि जितो दुख पायो।
अब हमसों वसुदेव-देवकी कहत आपनो जायो॥
कहिए कहा नंद-बाबा सो, बहुत निठुर मन कीन्हो।
सूर, हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीन्हो॥

गोपी विरह

(१)

बिछुरे श्रीव्रजराज ग्राज इन नैनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग विहंगम, ह्वै न गए सखि स्याम-मई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौन भई।
साँचेहु क्रूर, कुटिल, सित, मेचक वृथा मीन-छवि छीनि लई॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गए नित सूल नई।
सूरदास, याही तें जड़ भए, जब पलकनि हठि दगा दई॥

(२)

मेरे नैना विरह की बेलि बई।
सींचत तीर नैन के, सजनी, मूल पताल गई॥
विगसति लता सुभाय आपने, छाया सघन भई।
अब कैसे निरुवारौं सजनी सब तन पसरि लई॥
को जानै काहू के जिय की छिन छिन होत नई।
सूरदास स्वामी के बिछुरे लगी प्रेम-झँई॥

(३)

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
ग्रासर-रैनि नाँव लै बोलत, भयो विरह-ज्वर कारो॥
आपु दुखित पर जिय जानि, चातक नाव तिहारो।
देखो सकल बिचारि, सखी, जिय बिछुरन को दुख न्यारो॥
जाहि लगै, सोई पै जानै प्रेम-बान ग्रानियारो।
सूरदास, प्रभु, स्वाति-बूँद लगि तज्यो सिंधु करि खारो॥

(४)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतग करी दीपक से ाँ, आपै प्रान दह्यो ?
अलिसुत प्रीति करी जलसुत से ाँ, सपुट माँझ गह्यो ।
सारग प्रीति करी जुनाद से ाँ सनमुख बान सह्यो ।।
हम जो प्रीति करी माधो से ाँ, चलत न कछू कह्यो ।
सूरदास, प्रभू बिनु, दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो ।।

(१)

जोग-ठगौरी व्रज न बिकैहै ।।
यह ब्योपार तिहारो, ऊधो, ऐसोई फिरि जैहै ।
जापै लै आए हो, मधुकर, ताके उर न समैहै ।।
दाख छाँडिकै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातन के केना को मुकताहल दैहै ?
सूरदास, प्रभु गुनहिं छाँडिकै, को निरगुन निरबैहै ?

(२)

अखियाँ हरि-दरसन की भूखी ?
कैसे रहैं रूप-रस राची ये बतियाँ सुनि रूखी ।।
अवधि गनत, इकटक मग जोवत, तब एती नहिं झूँखी ।
अब इन जोग-सदेसनि ऊधो, अति अकुलानि दूखी ।।
बारक वहि मुख फेरि दिखावहु, दुहि पय पिवत पतूखी ।
सूर, सिकति हठि नाव चलावौ, ए सरिता हैं सूखी ।।

(३)

सँदेसनि मधुबन-कूप भरे ।
जे कोऊ पथिक गए हैं ह्याँते, फिरि नहिं अवन करे ।।
कै वै स्याम सिखाइ समोधे, कै वै बीच मरे ।
अपने दूत नहिं पठवत नन्दनन्दन, हमरेउ फेरि धरे ।।
मसि खूटि, कागद जल भीजे, सर दौ लागि जरे ।
पाती सूर लिखे कहो क्योंकर पलक कपाट अरे ?

(४)

ग्रौर सकल ग्रंगन तें, ऊधो, ग्रखियाँ दुखारी ॥
ग्रति ही पिराति, सिराति न कबहूँ बहुत जतन करि हारी ।
इकटक रहति, निमेख न लावति, विथा-विकल भईं भारी ॥
भरि गईं विरह-बायु बिनु दरसन, चितवन रहतिं उघारी ।
सूर, सु-ग्रंजन ग्रानि रूप-रस, ग्रारति-हरन हमारी ॥

(५)

ग्रायो घोष बडो व्योपारी ।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की व्रज मे ग्राय उतारी ॥
फाटक दै कर हाटक माँगत भौरे निपट सुधारी ।
धुर ही ते खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी ॥
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन ग्रजानि ?
ग्रापनो दूध छाँडि को पीवै खार कूप को पानी ॥
ऊधो जाहु सवार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि ग्रानि दिखावौ ॥

(६)

ग्राए जोग सिखावन पाँडे ।
परमारथी पुराननि लादे ज्यो बनजारे टाँडे ॥
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सीखें ते राँडे ।
कहौ, मधुप, कैसे समायँगे एक म्यान दो खाँडे ॥
कहु पटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के सँग गाँडे ।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँडे ॥
काहे को झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँडे ।
सूरदास तीनो नही उपजत धनिया धान कुम्हाँडे ॥

(७)

ए अलि ! कहा जोग मे नीको ?
तजि रसरीति नन्दनन्दन की सिखवत निर्गुन फीको ॥
देखत सुनत नहिं कुछ स्रवननि, ज्योति-ज्योति करि ध्यावत ।
सुन्दरस्याम दयालु कृपानिधि कैसे हो बिसरावत ?
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भूलें ।
अपनी भुजा ग्रीव पर मेलें गोपिन के सुख फूलें ॥
लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि-मिलि कै घर बन खेली ।
अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली ॥

(८)

अँखिया हरि-दरसन को भूखी ।
कैसे रहैं रूपरसराँची ये बतिया सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूखी ।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी ।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी ॥

(९)

रहु रे, मधुकर ! मधुमतवारे ।
कहा करौं निर्गुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे ॥
लोटत नीच परागपक मे पचत, न आपु सम्हारे ।
बारम्बार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे ॥
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे ।
घरी पहर सबको बिलमावत जैते आवत कारे ॥

सुन्दरस्याम कमलदल-लोचन जसुमति नंद दुलारे ।
सूर स्याम को सर्वस अर्प्यो अब कापै हम लेहि उधारे ॥

(१०)

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजे ।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजे ।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूले, अलि गुंजे ॥
पवन पानि घनसार सजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुंजे ।
ए ऊधो, कहियो माधव सो बिरह करद करि मारत लुंजे ॥
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यो गुंजे ॥

(११)

ऊधो ! ब्रज की दसा बिचारौ ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोगकथा बिस्तारौ ॥
जेहि कारन पठए नन्दनन्दन सो सोचहु मन माही ।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाही ॥
तुम निज दास जो सखा स्याम के सतत निकट रहत हौ ।
जल बूडत अवलब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ ॥
वै अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौ ।
जोग जुक्ति औ मुक्ति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं ॥
जेहि उर बसे स्यामसुन्दर घन क्यो निर्गुन कहि आवै ।
सूरस्याम सोइ भजन बहावै जाहि दूसरो भावै ॥

(१२)

देखियत कालिंदी अति कारी ।
कहियो, पथिक ! जाय हरि सा ज्यो भई बिरह जुर-जारी ॥

मनो पालिका पैं परी घरनि धँसि तरंग तनु भारी ।
तटवारू उपचार-चूर मनो, स्वेद प्रवाह पनारी ॥
विगलित कच कुस कास पुलिन मनो, पक जु कज्जल सारी ।
भ्रमर मनो मति भ्रमत चहूँ दिस, फिरती है अग दुखारी ॥
निसदिन चकई-व्याज बकत मुख, किन मानहुँ अनुहारी ।
सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गति भई हमारी ॥

(१३)

हमको सपनेहू मे सोच ।
जा दिन तैं बिछुरे नन्दनन्दन ता दिन ते यह पोच ॥
मनो गोपाल आए मेरे घर, हँसि करि भुजा गही ।
कहा करौं वैरिनि भइ निंदिया, निमिप न और रही ॥
ज्यों चकई प्रतिबिम्ब देखिकै आनन्दी पिय जानि ।
सूर, पवन मिस निठुर बिधाता चपल करयो जल आनि ॥

(१४)

को कहै हरि सो बात हमारी ?
हम तो यह तब लें जिय जान्यौ जबै भए मधुकर अधिकार ॥
एक प्रकृति, एकै कैतव-गति, तेहि गुन अस जिय भावै ।
प्रगटत है नव कज मनोहर, व्रज किंसुक कारन बात आवै ॥
कजतोर चम्पक-रस-चचल, गति सब ही तें न्यारी ।
ता अलि की सगति बसि मधुपुरि सूरदास प्रभु सुरति बिसारी ॥

(१५)

ऊधो ! मन माने की बात !
दाखछुहारा छाँडि अमृत-फल बिप-कीरा बिप खात ।

जौ चकोर को दै कपूर कोउ तजि अगार अघात ?
मधुप करत घर कोरि काठ मे बँधत कमल के पात ।।
ज्यो पतग हित जानि आपनो दीपक सो लपटात।
सूरदास जाको मन जासो सोई ताहि सुहात ।।

(१६)

अब अति पगु भयो मन मेरा।
गयो तहाँ निर्गुन कहिबे को, भयो सगुन को चेरो ।।
अति अज्ञान कहत कहि आयो दूत भयो वहि केरो।
निज जन जानि जतन ते तिनसो कीन्हो नेह घनेरो ।।
मैं कछु कही ज्ञानगाथा ते नेकु न दरसति नेरो।
सूर मधुप उठि चल्यो मधुपुरी बोरी जोग को बेरो ।।

(१७)

कहँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम! तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात,।।
गोपी, ग्वाल, गाय, गोमुत सब मलिनवदन, कृसगात।
परम दीन जनु सिसिर हेम हत अबुजगन बिनु पात ।।
जो कोउ आवत देखति हैं सब मिलि बूझति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात ।।
पिक, चातक वन बसन न पावहि, बायस बलिहि न खात।
सूर स्याम सदेसन के डर पथिक न वा मग जात ।।

(१८)

माधव! यह ब्रज को व्योहार।
मेरो कह्यो पवन को भुस भयो, गावत नन्दकुमार ।।

एक ग्वारि गोधन लै रँगति, एक लकुट कर लेति।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँटि कै देति॥
एक ग्वारि नटवर बहु लीला, एक कर्म-गुन गावति।
कोटि भाँति कै मैं समुझाई नेकु न उर मे ल्यावति॥
निसिबासर ये ही व्रत सब ब्रज दिन-दिन नूतन प्रीति।
सूर सकल फीको लागत है देखत वह रसरीति॥

(१९)

तब ते इन सबहिन सचु पायो।
जब ते हरि-संदेस तिहारो सुनत ताँवरो आयो॥
फूले ब्याल, दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायो।
भूले मृगा चौकि चरनन तें, हुतो जो जिय बिसरायो॥
ऊँचे बैठि विहग-सभा बिच कोकिल मंगल गायो।
निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूछ हिलायो॥
गृहवन ते गजराज निकसि के अँग अँग गर्ब जनायो।
सूर बहुरिहौ, कह राधा, कै करिहौ बैरिन भायो?

(२०)

ऊधो! मोहि ब्रज बिसरत नाही।
हंससुता की सुन्दरि कगरी अरु कुंज की छाहीं॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत, तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं॥

तुलसी-काव्य

१--राम-कथा

तदपि कही गुर बारहिं बारा ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।
मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥१॥

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें ।
तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें ॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी ।
करउँ कथा भव सरिता तरनी ॥२॥

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि ।
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि ॥
रामकथा कलि पंनग भरनी ।
पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ॥३॥

रामकथा कलि कामद गाई ।
सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि ।
भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनी ॥४॥

असुर सेन सम नरक निकंदिनि ।
साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि ॥

संत समाज पयोधि रमा सी।
बिस्व भार भर अचल छमा सी ॥५॥

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी।
जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी।
तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ॥६॥

रामकथा मदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥७॥

रामचरित चिंतामनि चारू।
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।
जग मंगल गुनग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥८॥

सदगुर ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के।
बीज सकल व्रत धरम नेम के ॥९॥

समन पाप संताप सोक के।
प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के।
कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥१०॥

काम कोह कलिमल करिगन के।
केहरि सावक जन मन बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।
कामद घन दारिद दवारि के ॥११॥

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से।
सेवक सालि पाल जलधर से॥१२॥

अभिमत दानि देवतरु बर से।
सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से।
रामभगत जन जीवन धन से॥१३॥

सकल सुकृत फल भूरि भोग से।
जग हित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से।
पावन गंग तरंग माल से॥१४॥

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥१५॥

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड लाहु॥१६॥

मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुन्दर स्याम सरीर॥१७॥

दरस परस मज्जन अरु पाना।
हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति।
कहि न सकइ सारदा बिमलमति॥१८॥

राम धामदा पुरी सुहावनि।
लोक समस्त बिदित अति पावनि॥

चारि खानि जग जीव अपारा।
अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥१९॥

सब बिधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।
सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥२०॥

रामचरितमानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई।
होई सुखी जौं एहिं सर परई ॥२१॥

रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥२२॥

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा मन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर।
धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥२३॥

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥२४॥

जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा वृषकेतु ॥२५॥

सभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी।
रामचरितमानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥३६॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी॥२७॥

लीला सगुन जो कहहिं बखानी।
सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई।
सोइ मधुरता सुसीतलताई॥२८॥

सो जल सुकृत सालि हित होई।
राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन।
सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥२९॥

सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥३०॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।
ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥३१॥

राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई।
जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥३२॥

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा।
सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा।
सोइ पराग मकरंद सुबासा॥३३॥

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला।
ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती।
मीन मनोहर ते बहुभाँति॥३४॥

अरथ धरम कामादिक चारी।
कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा।
ते सब जलचर चारु तडागा॥३५॥

सुकृती साधु नाम गुन गाना।
ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
सन्तसभा चहुं दिसि अवँराई।
श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥३६॥

भगति निरूपन बिबिध बिधाना।
छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना।
हरि पद रति रस बेद बखाना॥३७॥

औरउ कथा अनेक प्रसगा।
तेइ सुक पिक बहुवरन विहगा॥३८॥

पुलक वाटिका वाग बन सुख सुबिहग विहारु।
माली सुमन सनेह जल सीचत लोचन चारु॥३९॥

जे गावहि यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहि सादर नर नारी।
तेइ सुरवर मानस अधिकारी॥४०॥

अति खल जे विषई वग कागा।
एहि सर निकट न जाहि अभागा॥
सवुक भेक सेवार समाना।
इहा न विषय कथा रस नाना॥४१॥

तेहि कारन आवत हियँ हारे।
कामी काक बलाक विचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई।
राम कृपा बिनु आइ न जाई॥४२॥

कठिन कुसग कुपथ कराला।
तिन्ह के बचन वाघ हरि व्याला॥
गृह कारज नाना जजाला।
ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥४३॥

बन बहु विषम मोद मद माना।
नदी कुतर्क भयकर नाना॥४४॥

जे श्रद्धा सबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥४५॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई।
जातहिं नीद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा।
गएहु न मज्जन पाव अभागा ॥४६॥

करि न जाइ सर मज्जन पाना।
फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा।
सर निंदा करि ताहि बुझावा ॥४७॥

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही।
राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई।
महा घोर त्रयताप न जरई ॥४८॥

ते नर यह सर तजहिं न काऊ।
जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहि सर भाई।
सो सतसंग करउ मन लाई ॥४९॥

अस मानस मानस चख चाही।
भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥५०॥

चली सुभग कबिता सरिता सो।
राम बिमल जस जल भरिता सो॥

। सरजू नाम सुमंगल मूला।
लोक बेद मत मंजुल कूला ॥५१॥

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि।
कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि ॥५२॥

श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥५३॥

रामभगति सुरसरितहि जाई।
मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन।
मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥५४॥

जुग बिच भगति देवधुनि धारा।
सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी।
राम सरूप सिंधु समुहानी ॥५५॥

मानस मूल मिली सुरसरिही।
सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा।
जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥५६॥

उमा महेस बिबाह बराती।
ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबर जनम अनन्द बधाई।
भवँर तरंग मनोहरताई ॥५७॥

बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग ।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारिबिहंग ॥५८॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई ।
सरित सुहावनि सो छबि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका ।
केवट कुसल उतर सबिवेका ॥५९॥

सुनि अनुकथन परस्पर होई ।
पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी ।
घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥६०॥

सानुज राम बिबाह उछाहू ।
सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं ।
ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥६१॥

राम तिलक हित मंगल साजा ।
परब जोग जनु जुरे समाजा ॥
काई कुमति केकई केरी ।
परी जासु फल बिपति घनेरी ॥६२॥

समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग ।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग ॥६३॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी ।
समय सुहावनि पावनि भूरी ॥

हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू ।
सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥६४॥

बरनब राम विवाह समाजू ।
सो मुद मंगलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू ।
पंथकथा खर आतप पवनू ॥६५॥

बरषा घोर निसाचर रारी ।
सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई ।
बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥६६॥

सती सिरोमनि सिय गुनगाथा ।
सोइ गुन अमल अनूपम पाथा ॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई ।
सदा एकरस बरनि न जाई ॥६७॥

अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास ।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास ॥६८॥

आरति बिनय दीनता मोरी ।
लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी ।
आस पिआस मनोमल हारी ॥६९॥

राम सुप्रेमहि पोषत पानी ।
हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥

भव श्रम सोषक तोषक तोषा।
समन दुरित दुख दरिद दोषा ॥७०॥ (८)

काम कोह मद मोह नसावन।
बिमल बिबेक बिराग बढावन॥
सादर मज्जन पान किए तें।
मिटहिं पाप परिताप हिए तें ॥७१॥

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए।
ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥७२॥

मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ ॥७३॥

(२) सगुन-निर्गुण राम

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥१॥

जो गुन रहित सगुन सोई कैसें।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।
तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥२॥

राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥३॥

हरष विषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेस पुराना॥४॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥५॥

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी।
प्रभु पर मोह धरहिं जड प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी।
झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥६॥

चितव जो लोचन अगुलि लाएँ ।
प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥
उमा राम विषइक अस मोहा ।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥७॥

विषय करन सुर जीव समेता ।
सकल एक तें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई ।
राम अनादि अवधपति सोई ॥८॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ।
मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता तें जड़ माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ॥९॥

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥१०॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई ।
जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपनें सिर काटै कोई ।
बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥११॥

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई ।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा ।
मति अनुमानि निगम अस गावा ॥१२॥

अब जहँ राउर आयसु होई ।
मुनि उदबेगु न पावै कोई ॥७॥

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं ।
ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू ।
दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ॥८॥

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ ।
सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला ।
बासु करौं कछु काल कृपाला ॥९॥

सहज सरल सुनि रघुबर बानी ।
साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू ।
तुम्ह पालक सन्तत श्रुति सेतू ॥१०॥

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी ।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ॥११

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१२॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे ।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा ।
और तुम्हहि को जाननिहारा ॥१३॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन।
जानहिं भगत भगत उर चंदन॥१४॥

चिदानन्दमय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥१५॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे।
जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा।
जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥१६॥

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥१७॥

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने।
सकुचि राम मन महु मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी।
बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥१८॥

सुनहु राम अब कहउँ निकेता।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥१९॥

भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥२०॥

निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी ।
रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक ।
बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक ॥२१॥

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिय तासु ॥२२॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा ।
सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥२३॥

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि बिनय विसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥२४॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मन्त्रराजु नित जपहिं तुम्हारा ।
पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥२५॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना ।
बिप्र जेवांइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी ।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥२६॥

सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥२७॥

काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥२८॥

सब के प्रिय सब के हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥२९॥

तुम्हहि छाडि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी ।
धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥३०॥

जे हरषहिं पर संपति देखी ।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे ।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥३१॥

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥३॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं ।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका ।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥३३॥

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा ।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।।३४।।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई ।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई ।
तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ।।३५।।

सरगु नरकु अपबरगु समाना ।
जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ।।
करम बचन मन राउर चेरा ।
राम करहु तेहि क उर डेरा ।।३६।।

जाहि न चाहिअ कबहु कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ।।३७।।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए ।
बचन सप्रेम राम मन भाए ।।
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक ।
आश्रम कहउँ समय सुखदायक ।।३८।।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू ।
तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।।
सैलु सुहावन कानन चारू ।
करि केहरि मृग बिहग बिहारू ।।३९।।
नदी पुनीत पुरान बखानी ।
अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ।।

सुरसरि धार नाउँ मन्दाकिनि।
जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥३८॥

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू।
राम देहु गौरव गिरिबरहू ॥३९॥
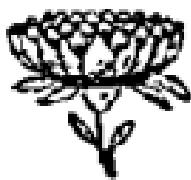
(४) चित्रकूट-महिमा

चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ॥१॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू।
करहु कतहु अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा।
चहु दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥२॥

नदी पनच सर सम दम दाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥३॥

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा।
थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना।
चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥४॥

कोल किरात बेष सब आए।
रचे परन तृन सदन सुहाए ॥
बरनि न जाहिं मजु दुइ साला।
एक ललित लघु एक बिसाला ॥५॥

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत ॥६॥

अमर नाग किंनर दिसिपाला ।
चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू ।
मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥७॥

बरषि सुमन कह देव समाजू ।
नाथ सनाथ भए हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए ।
हरषित निज निज सदन सिधाए ॥८॥

चित्रकूट रघुनन्दन छाए ।
समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
आवत देखि मुदित मुनिबृन्दा ।
कीन्ह दण्डवत रघुकुल नन्दा ॥९॥

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेही ।
सुफल होन हित आसिष देही ॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं ।
साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥१०॥

जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनि बृन्द ।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछन्द ॥११॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ।
हरषे जनु नव निधि घर आई ॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ॥१२॥

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता ।
अपर तिन्हहि पूछहि मगु जाता ॥

कहत सुनत रघुबीर निकाई ।
आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥१३॥

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढे ।
पुलक सरीर नयन जल बाढे ॥१४॥

राम सनेह मगन सब जाने
कहि प्रिय वचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरि ।
वचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥१५॥

अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय ।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय ॥१६॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा ।
जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य विहग मृग काननचारी ।
सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥१७॥

हम सब धन्य सहित परिवारा ।
दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ विचारि ।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥१८॥

हम सब भाँति करब सेवकाई ।
करि केहरि अहि बाघ बराई ॥

बन बेहड गिरि कन्दर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥१९॥

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब।
सर निरझर जल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचब आयसु देता ॥२०॥

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ॥२१॥

रामहि केवल प्रेमु पिआरा।
जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥२२॥

बिदा किए सिर नाई सिधाए।
प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई।
बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥२३॥

जब तें आइ रहे रघुनायकु।
तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना।
मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥२४॥

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए।
मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी।
त्रिबिध बयारि बहइ सुखदेनी ॥२५॥

नीलकठ कलकठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर ॥२६॥

करि केहरि कपि कोल कुरगा।
बिगतबैर बिचरहिं सब सगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी।
होहिं मुदित मृगबृन्द बिसेषी ॥२७॥

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माही।
देखि रामबनु सकल सिहाही॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या।
मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥२८॥

सब सर सिंधु नदी नद नाना।
मदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू।
मन्दर मेरु सकल सुरवासू ॥२९॥
सैल हिमाचल आदिक जेते।
चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई।
श्रम बिनु बिपुल बडाई पाई ॥३०॥

चित्रकूट के विहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुज सब धन्य अस कहहिं देव दिन रात ॥३१॥

(५) राम-भरत-मिलन

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई।
बन्दि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी।
सोक बिकल बनवास दुखारी॥१॥

सहित समाज राउ मिथिलेसू।
बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा।
हित सबही कर रौरें हाथा॥२॥

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ।
मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा।
नरक सरिस दुहु राज समाजा॥३॥

प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥४॥

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।
जहँ न राम पद पकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू।
जहँ नहि राम पेम परधानू॥५॥

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही।
तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के।
बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥६॥

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ।
भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए।
रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥७॥

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए।
सील सनेह सुभायँ सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई।
सब कर धरम सहित हित होई॥८॥

ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥९॥

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे।
लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं।
आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥१०॥

रामहि रायँ कहेउ बन जाना।
कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई।
प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥११॥

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी।
भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा।
चले भरत पहिं सहित समाजा॥१२॥

राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सील सनेहु।
संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु॥१३॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी ।
बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू ।
कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥१४॥

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू ।
ग्यान अबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी ।
जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥१५॥

एहिं समाज थल बूझब राउर ।
मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहउँ बडि बाता ।
छमब तात लखि बाम बिधाता ॥१६॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ।
सेवाधरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू ।
बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥१७॥

राखि राम रख धरमु व्रत पराधीन मोहि जानि ।
सब के समत सर्व हित करिअ पेमु पहिचानि ॥१८॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ ।
सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मजु कठोरे ।
अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१९॥

ज्यो मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी ।
गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥

भूप भरतु मुनि सहित समाजू ।
गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥२०॥

सुनि सुधि सोच विकल सब लोगा ।
मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥
देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी ।
निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ॥२१॥

राम भगतिमय भरतु निहारे ।
सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे ॥
सब कोउ राम पेमपय पेखा ।
भए अलेख सोच बस लेखा ॥२२॥

रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु ।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु ॥२३॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही ।
देबि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया ।
पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥२४॥

विबुध विनय सुनि देबि सयानी ।
बोली सुर स्वारथ जड जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू ।
लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२५॥

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी ।
सोउ न भरत मति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी ।
चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥२६॥

भरत हृदयँ सिय राम निवासू ।
तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका ।
बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका ॥२७॥

सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमन्त्र कुठाटु ।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ॥२८॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू ।
भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा ।
सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥२९॥

समय समाज धरम अबिरोधा ।
बोले तब रघुबंस पुरोधा ॥
जनक भरत संबादु सुनाई ।
भरत कहाउति कही सुहाई ॥३०॥

तात राम जस आयसु देहू ।
सो सबु करै मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी ।
बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥३१॥

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू ।
मोर कहब सब भाँति भदेसू ॥
राउर राय रजायसु होई ।
राउरि सपथ सही सिर सोई ॥३२॥

राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत ।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत ॥३३॥

सभा सकुच बस भरत निहारी।
रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा।
बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥३४॥

सोक कनकलोचन मति छोनी।
हरी विमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक वराहँ बिसाला।
अनायास उधरी तेहि काला॥३५॥

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे।
रामु राउ गुर साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा।
कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥३६॥

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई।
मानस तें मुख पकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली।
भरत भारती मजु मराली॥३७॥

निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥३८॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी।
पूज्य परम हित अन्तरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू।
प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू॥३९॥

समरथ सरनागत हितकारी।
गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥

स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं।
मोहि समान मैं साईं दोहाईं ॥४०॥

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली।
आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू।
अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥४१॥

राम रजाइ मेट मन माहीं।
देखा सुना कतहु कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई।
प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥४२॥

कृपाँ भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर॥४३॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई।
जगत बिदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी।
नीच निसील निरीस निसंकी॥४४॥

तेउ सुनि सरन सामुहें आए।
सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने।
सुनि गुन साधु समाज बखाने॥४५॥

को साहिब सेवकहि नेवाजी।
आपु समाज साज सब साजी॥

निज करतूति न समुझिअ सपनें।
सेवक सकुच सोचु उर अपनें ॥४६॥

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी।
भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना।
गुन गति नट पाठक आधीना ॥४७॥

यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर ॥४८॥

सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ।
आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा।
सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥४९॥

देखेउँ पाय सुमगल मूला।
जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बडे़ समाज बिलोकेउँ भागू।
बडी चूक साहिब अनुरागू ॥५०॥

कृपा अनुग्रहु अगु अघाई।
कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाईं।
अपने सील सुभायँ भलाईं ॥५१॥

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई।
स्वामि समाज सकोच बिहाई॥

अविनय विनय जथारुचि बानी।
छमिहि देउ अति आरती जानी ॥५२॥

सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥५३॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिए अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की ॥५४॥

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जन पावै देवा ॥५५॥

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी।
पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई।
समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥५६॥

कृपासिंधु सनमानी सुबानी।
बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ।
सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ ॥५७॥

रघुराउ सिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति कीम हिमा घनी ॥

भरतहि प्रससत विबुध बरषत सुमन मानस मलिन से ।
तुलसी विकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ।।५८।।

भरत विमल जसु विमल विधु सुमति चकोरकुमारि ।
उदित विमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि ।।५९।।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ ।
लघु मति चापलता कवि छमहूँ ।।
कहत सुनत सति भाउ भरत को ।
सीय राम पद होइ न रत को ।।६०।।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को ।
जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ।।
देखि दयाल दसा सबही की ।
राम सुजान जानि जन जी की ।।६१।।

धरम धुरीन धीर नय नागर ।
सत्य सनेह सील सुख सागर ।।
देसु कालु लखि समउ समाजू ।
नीति प्रीति पालक रघुराजू ।।६२।।

बोले बचन बानि सरिबसु से ।
हित परिनाम सुनत ससि रसु से ।।
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना ।
लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ।।६३।।

करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुर समाज लघु बँधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात ।।६४।।

जानहु तात तरनि कुल रीती।
सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की।
उदासीन हित अनहित मन की॥६५॥

तुम्हहि विदित सबही कर करमू।
आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा।
तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥६६॥

तात तात बिनु बात हमारी।
केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू।
हमहि सहित सबु होत खुआरू॥६७॥

जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू।
जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा।
मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥६८॥

राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥६९॥

सहित समाज तुम्हार हमारा।
घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू।
सकल धरम धरनीधर सेसू॥७०॥

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू।
तात तरनिकुल पालक होहू॥

साधक एक सकल सिधि देनी ।
कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।।७१।।

सो बिचारि सहि सकटु भारी ।
करहु प्रजा परिवारु सुखारी ।।
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई ।
तुम्हहि अवधि भरि बडि कठिनाई ।।७२।।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा ।
कुसमयँ तात न अनुचित मोरा ।।
होहिं कुठायँ सुबधु सुहाए ।
ओडिअहिं हाथ असनिहु के घाए ।।७३।।

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ।।७४।।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी ।
प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी ।।
सिथिल समाज सनेह समाधी ।
देखि दसा चुप सारद साधी ।।७५।।

भरतहि भयउ परम सतोषू ।
सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू ।।
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू ।
भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ।।७६।।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी ।
बोले पानि पकरुह जोरी ।।

नाथ भयउ सुखु साथ गए को।
लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥७७॥

अब कृपाल जस आयसु होई।
करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई।
अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥७८॥
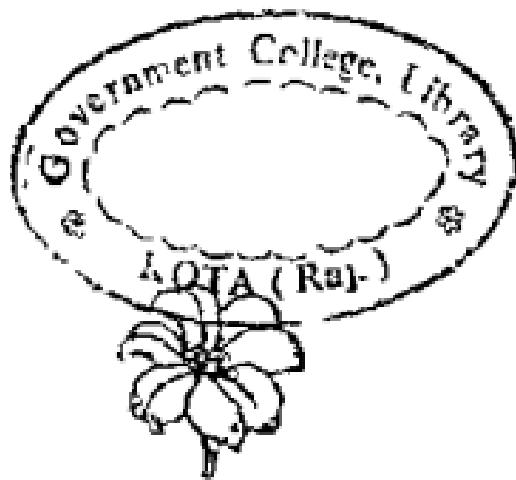
(६) राम-रावण-युद्ध

बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गम्भीर।
द्वन्दजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर ॥१॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा।
विप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा।
गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ॥२॥

जीतेहु जे भट संजुग माहीं।
सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना।
लोकप जाकें बंदीखाना ॥३॥

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा।
बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु।
कुम्भकरन घननादहि मारेहु ॥४॥

आजु बयरु सबु लेउँ निबाही।
जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउँ खलु काल हवाले।
परेहु कठिन रावन के पाले ॥५॥

सुनि दुबचन कालबस जाना।
बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई।
जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ॥६॥

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥७॥

राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥८॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर।
कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥
नानाकार सिलिमुख धाए।
दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥९॥

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा।
छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाडिसि तीव्र सक्ति खिसिआई।
बान संग प्रभु फेरि चलाई॥१०॥

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै।
बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसे।
खल के सकल मनोरथ जैसे॥११॥

तब सत बान सारथी मारेसि।
परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा।
तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥१२॥

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥

मंदोदरी उर कप कपति कमठ भू भूधर त्रसे।
बिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥१३॥

तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल ॥१४॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा।
प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका।
गर्जा अति अंतर बल थाका ॥१५॥

तुरत आन रथ चढ़ि खिसि आना।
अस्त्र सस्त्र छाँडेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके।
जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥१६॥

तब रावन दस सूल चलावा।
बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक।
खैंचि सरासन छाँड़े सायक ॥१७॥

रावन सिर सरोज बनचारी।
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे।
निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥१८॥

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना।
प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे।
भुजन्हि समेत सीस महि पारे ॥१९॥

काटतही पुनि भए नबीने।
राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।
कटत झटिति पुनि नूतन भए ॥२०॥

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा।
अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू।
मानहु अमित केतु अरु राहू ॥२१॥

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥२२॥

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी।
बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी।
धायउ दसहु सरासन तानी ॥२३॥

समर भूमि दसकधर कोप्यो।
बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥
दण्ड एक रथ देखि न परेऊ।
जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ ॥२४॥

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा।
तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे।
ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥२५॥

काटे सिर नभ मारग धावहिं।
जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥

कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा ।
कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥२६॥

कहँ राम कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले ।
सधानि धनु रघुबसमनि हँसि सरन्हि सिर बधे भले ॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृद बृदन्हि बहु मिली ।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ सग्राम बट पूजन चली ॥२७॥

पुनी दसकण्ठ क्रुद्ध होइ छाँडी सक्ति प्रचण्ड ।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दण्ड ॥२८॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा ।
प्रनतारति भजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला ।
सन्मुख राम सहेऊ सोइ सेला ॥२९॥
लागि सक्ति मुरुछा कछु भई ।
प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो ।
गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो ॥३०॥

रे कुभाग्य सठ मद कुबुद्धे ।
तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे ॥
सादर सिव कहुँ सीस चढाए ।
एक एक के कोटिन्ह पाए ॥३१॥
तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो ।
अब तव कालु सीस पर नाच्यो ॥
राम बिमुख सठ चहसि सपदा ।
अस कहि हनेसि माझ उर गदा ॥३२॥

उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परचो।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि सभारि धायो रिस भरचो ॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहि ता कहुँ गनै ॥३३॥

उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥३४॥

देखा श्रमित बिभीषनु भारी।
धायउ हनूमान गिरि धारी ॥
रथ तुरग सारथी निपाता।
हृदय माझ तेहि मारेसि लाता ॥३५॥

ठाढ रहा अति कम्पित गाता।
गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता ॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारि।
चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥३६॥

गहिसि पूँछ कपि सहित उडाना।
पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥
लरत अकास जुगल सम जोधा।
एकहि एकु हनत करि क्रोधा ॥३७॥

सोहहिं नभ छल बल बहु करही।
कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरही ॥
बुधि बल निसिचर परइ न पारयो।
तब मारुतसुत प्रभु सभारयो ॥३८॥

सभारि श्रीरघुबीर घोर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहु जय जय भन्यो ॥

हनुमंत सकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचड भुजबल दलमले ॥३९॥

तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पापंड ॥४०॥

अन्तरधान भयउ छन एका।
पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते।
जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥४१॥

देखे कपिन्ह अमित दससीसा।
जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा।
त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥४२॥

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन।
गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई।
जय कै आस तजहु अब भाई ॥४३॥

सब सुर जिते एक दसकधर।
अब बहु भए तकहु गिरि कदर॥
रहे बिरचि सभु मुनि ग्यानी।
जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानि ॥४४॥

जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥

हनुमत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥४५॥

सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल तुरत दससीस ॥४६॥

प्रभु छन महुँ माया सब काटी।
जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे।
फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥४७॥

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे।
फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए।
तरल तमकि संजुग महि आए ॥४८॥

अस्तुति करत देवतन्हि देखें।
भयउँ एक इन्ह के लेखें॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल।
अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥४९॥

हाहाकार करत सुर भागे।
खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो।
कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥५०॥

गहि भूमि पारयो लात मारयो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥

करि दाप चाप चढाइ दस सधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई ॥५१॥

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढे पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥५२॥

सिर भुज बाढि देखि रिपु केरी।
भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ कटेहुँ भुज सीसा।
धाए कोपि भालु भट कीसा ॥५३॥

बालितनय मारुति नल नीला।
बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा।
सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥५४॥

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी।
भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥
तब नल नील सिरन्हि चढि गयऊ।
नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ ॥५५॥

रुधिर देखि विषाद उर भारी।
तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरही।
जनु जुग मधुप कमल बन चरही ॥५६॥

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी।
महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥

पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे ।
सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे ॥५७॥

हनुमदादि मुरछित करि बंदर ।
पाइ प्रदोष हरष दसकंधर ॥
मुरछित देखि सकल कपि बीरा ।
जामवंत धायउ रनधीरा ॥५८॥

संग भालु भूधर तरु धारी ।
मारन लगे पचारि पचारी ॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना ।
गहि पद महि पटकइ भट नाना ॥५९॥

देखि भालुपति निज दल घाता ।
कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥६०॥

उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा ।
गहि भालुबी सहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा ॥
मुरछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो ।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥६१॥

मुरछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास ।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥६२॥

२–बरवै रामायण

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ।।१।।

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय-ग्रग, सखि ! कोमल, कनक कठोर ।।२।।

सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाइ ।
निसि मलीन वह, निसि-दिन यह बिगसाइ ।।३।।

चपक-हरवा ग्रँग मिलि ग्रधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय-हियरे जब कुँभिलाइ ।।४।।

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव ।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव ? ।।५।।

भाल तिलक सिर, सोहत भौंह कमान ।
मुख ग्रनुहरिया केवल चद समान ।।६।।

तुलसी बक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि ।
कस प्रभु नयन कमल ग्रस कहौ बखानि ।।७।।

गरब करहु रघुनदन जनि मन माँह ।
देखहु ग्रापनि मूरति सिय कै छाँह ।।८।।

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहि बताउ ।।९।।

सीय-बरन सम केतकि ग्रति हिय हारि ।

सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।
अगिनि-ताप ह्वै तम कह सँचरत आइ ॥११॥

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम ॥१२॥

बिरह-आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ॥१३॥

डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम ॥१४॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ ॥१५॥

राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।
असुरज कहँ लखि लागत जग अँधियार ॥१६॥

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय।
सीयराम-पद तुलसी प्रेम बढाय ॥१७॥

रामनाम दुइ आखर हिय हितु जानु।
राम लषन सम तुलसी सिखब न आनु ॥१८॥

केहि गिनती महँ ? गिनती जस बनघास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥१९॥

कामधेनु हरिनाम, कामतरु राम।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम ॥२०॥

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु ॥२१॥

३ विनय पत्रिका

(१)

हरनि पाप त्रिविधि ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ-फरित॥
सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल-भरित।
बिमलतर तरंग लसत रघुबरके-से चरित॥
तौ बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित?
घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित॥

(२)

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढन।
त्यों त्यों सुकृट-सुभट कलि-भूपहिं, निदरि लगे बहु काढन।
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जगमन मुख मलीन लहै आढ न॥
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लगे डाढन॥

(३)

सब सोच-बिमोचन चित्रकूट। कलिहरन, करन कल्यान बूट॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन बिचित्र, बारी बिसाल॥
मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच। बर बारि, बिषम नर-नारि नीच॥
साखा सुसृंग, भूरुह-सुपात। निरझर मधुबर, मृदु मलय बात॥
सुक, पिक, मधुकर, मुनिबर बिहारु। साधन प्रसून, फल चारि चारु॥
भव-घोरघाम-हर सुखद छाँह। थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह॥
साधक-सुपथिक बडे भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ॥
रस एक, रहित-गुन करम-काल। सिय राम लखन पालक कृपाल॥
तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम। से इय गिरि करि निरुपाधि नेम॥

(४)

हरति सब आरती आरती रामकी।
दहन दुख-दोष, निरमूलिनि कामकी॥
सुरभ सौरभ धूप दीपवर मालिका।
उड़त अघ-बिहँग सुनि ताल करतालिका॥
भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी।
बिमल बिग्यानमय तेज-बिस्तारिनी॥
मोह-मद-कोह-कलि-कज-हिमजामिनी।
मुक्तिकी दूतिका, देह-दुति दामिनी॥
प्रनत-जन-कुमुद-वन-इंदु-कर-जालिका।
तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका॥

(५)

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम-नाम ही सो अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाडि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥

(६)

जागु, जागु, जीव जड! जोहै जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी॥

सोवत सपनेहू सहै मसृति-सताप रे ।
बूड्यो मृग-वारि खायो जेवरीको साँप रे ॥
कहैं वेद-बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे ।
दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे ॥
तुलसी जागेते जाय ताप तिहू ताय रे ।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥

(७)

सुनु मन मूढ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-विमुख लह्यो न काहू सुख, सठ ! यह समुझ सवेरो ॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बडेरा ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति सदेहु निवेरो ।
तुलसिदास सब आस छाडि करि, होहु रामको चेरो ॥

(८)

ऐसी मूढता या मनकी ।
परिहरि राम-भगति सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यो, तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होति लोचनकी ॥
ज्यो गच-काँच बिलोकि सेन जड छाँह आपने तनकी ।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आननकी ॥
कहँ लौ कहौं कुचाल कृपानिधि ? जानत हौ गति जनकी ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥

(९)

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जनके ।
तौ क्यों कटत सुकृत-नखते मो पै, बिपुल वृन्द अघ-बनके ॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मनके ।
हारहिं अमित सेष सारद श्रुति, गिनत एक-एक छनके ॥
जो चित चढ़ै नाम-महिमा निज, गुनगन पावन पनके ।
तो तुलसिहिं तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगनके ॥

(१०)

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंडकी नाईं ॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥

(११)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥
पायेउँ नाम चारु चिन्तामनि, उर कर तें न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

(१२)

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ॥
सून्य भीति पर चित्र, रग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहिं तनु हेरे ॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माही ।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाही ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल को उ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

(१३)

मैं जानी, हरिपद-रति नाही । सपनेहु नहिं बिराग मन माही ॥
जे रघुबीर चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोगसम त्यागे ॥
काम-भुजग डसत जब जाही । बिषय-नीब कटु लगत न ताही ॥
असमजस अस हृदय बिचारी । बढत सोच नित नूतन भारी ॥
जब कब राम कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥

(१४)

कृपासिंधु ताते रहौं निसिदिन मन मारे ।
महाराज ! लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥
मिले रहैं, मारयौ चहैं कामादि सघाती ।
मो बिनु रहै न, मेरियै जारैं छल छाती ॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।
कियो कथकको दड हौं जड करम कुचाली ॥
देखी सुनी न आजु लौं अपनायति ऐसी ।
करहि सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी ॥

बडे अलेखी लखि परें, परिहरे न जाही ।
अरामजसमे मगन हौं, लीजै गहि बाही ।।
बारक उलि अवलोकिये, कातुक जन जी को ।
अनायास मिटि जाइगो सकट तुलसीको ।।

(१५)

मैं हरि पतित-पावन सुने ।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ।।
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ।।
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक सुरपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये आपने ।।

(१६)

कबहुक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपाल-कृपाते सत-सुभाव गहौंगो ।।
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सा कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत निरन्तर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।।
परुप बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोप कहौंगो ।।
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो ।।

(१७)

केहू भाति कृपासिंधु मेरी ओर हरिये ।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिये ।।

सहस सिलाते अति जड मति भई है ।
कासो कहौं कौन गति पाहनहिं दई है ॥
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।
कलि-मल खल देखि भारी भीति कियो हौं ॥
करम-कपीस बालि-बली, त्रास-त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बाँह दस्यो हौं ॥

(१८)

जौ मन लागै रामचरन अस ।
देह-गेह-सुत-बित-कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥
द्वन्द्वरहित, गतमान, ग्यानरत, बिषय-बिरत खटाई नाना कस ।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न,कहु, क्यों न होहिं बस ॥
सर्वभूत-हित, निर्ब्यलीक चित, भगति-प्रेम दृढ नेम, एकरस ।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस, जेहि हतो सीसदस ॥

(१९)

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावो ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइ है ? केहि दीनता सुनावो ॥
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक, जहँ जहँ चितहिं डोलावो ।
इहै समुझि सुनि रहौ मौन ही, कहि भ्रम कहा गवावो ॥
गोपद बुडिबे जोग करम करौं, बातनि जलधि थहावो ।
अति लालची, काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावो ॥
तुलसी प्रभु जियकी जानत सब, अपनो कछुक जनावो ।
सो कीजै, जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावो ॥

(२०)

आपनो हित रावरेसों जो पै सूझै ।
जौं जनु तनुपर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥
निज अवगुन, गुन राम ! रावरो लखि-सुनि मति-मन रूझै ।
रहनि-कहनि-समुझनि तुलसीकी को कृपालु बिनु बूझै ॥

(२१)

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै ।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यो,
तेहि सहज नाथ सों नेह छाडि छल करिहै ॥
सुतकी प्रीति, प्रतीति मीतकी, नृप ज्यों डर डरिहै ।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों,
चहुँ विधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै ॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।
हानिलाभदुखसुख सबै समचित्तहि अनहित,
कलि-कुचालि परिहरिहै ॥
प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै ।
तुलसिदास भयो रामको, विस्वास,
प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै ॥

(२२)

द्वार द्वार दीनता कही, काढि रद, परि पाहू ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा,
दुख-दोष-दलन-छम, कियो न सँभाषन काहू ॥
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिता हू ।

काहेको रोष, दोष काहि धौ,
मेरे ही अभाग मोसो सकुचत छुइ सब छाँहू ।।
दुखित देखि सतन कह्यो, सोचै जनि मन माहू ।
तोसे पसु-पावर पातकी परिहरे न सरन गये,
रघुबर और निबाहू ।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहू ।
नामकी महिमा, सील नाथ को,
मेरो भलो बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ ।।

(२३)

राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितु साचो ?
स्वामी-सहित सबसो कहौ,
सुनि-गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ।।
देह-जीव-जोगके सखा मृषा टाचन टाँचो ।
किये बिचार सार कदलि ज्यो,
मनि कनकराग लघु लसत बीच बिच काँचो ।।
'विनय-पत्रिका' दीनकी, बापु ! आपु ही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी,
सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाचो ।।

मीराँ-पदावली

(१)

बस्या म्हारे णेणण मा नंदलाल।
मोर मुगट मकराक्रत कुंडल अरुण तिलक सोहा भाल।
मोहण मूरत सांवरा सूरत णेणा बण्या बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजा उर बैजंता माल।
मीरा प्रभु संता सुखदाया, भक्त बछल गोपाल॥

(२)

सांवरो नंदनंदन, दीठ पड्या माई।
डार्या सब लोकलाज सुध बुध बिसराई।
मोर चन्द्रका किरीट मुगट छब सोहाई।
केसर रो तिलक भाल, लोचन सुखदाई।
कुंडल झलका कपोल अलका लहराई।
मीणा तज सरवर ज्यो मकर मिलन धाई।
नटवर प्रभु भेष धरया रूप जग लोभाई।
गिरधर प्रभु अंग अंग, मीरा बलि जाई॥

(३)

णेणा लोभ्याँ अटका सक्या णा फिर आय।
रूँम रूँम नखसिख लख्या, ललक ललक अकुलाय।
म्हा ठाढ़ी घर आपणो, मोहन निकल्याँ आय।
बदन चन्द परगासता, मन्द मन्द मुसकाय।

सकलां कुटम्ब बरजता, बोल्या बोल बनाय।
णेणा चचल ग्रटक णा माण्या, परहथ गया बिकाय।
भलो कह्या काइ कह्या बुरोरी सब लया सीस चढाय।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बिणा पल रह्या णा जाय।।

(४)

म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरा णा कूयां।
दूसरा णा कूया साधा सकल लोक जूया।
भाया छाड्या, बधा छाड्या, छाड्या सगा सूया।
साधा ढिग बेठ बेठ, लोक लाज खूया।
भगत देख्या राजी ह्यया, जगत देख्या रूया।
ग्रसवा जल सींच सींच प्रेम वेल बूया।
दध मथ घृत काढ लया डार दया छूया।
राणा बिपरो प्याला भेज्या, पीय मगण हूया।
मीरा री लगण लग्या होणा हो जो हूया।।

(५)

म्हा गिरधर रग राती, सैंया म्हा।
पचरग चोला पहर्या सखी म्हा, झिरमिट खेलण जाती।
वा भरमिट मां मिल्यो सावरो, देख्या तण मण राती।
जिणरो पिया परदेस बस्यारी लिख लिख भेज्या पाती।
म्हारा पिया म्हारे हीयडे बसता ग्रावा णा जाती।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवा दिण राती।।

(६)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
साप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।

न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अम्रत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव मे मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय॥

(७)

जोगियाजी निसदिन जोऊँ बाट।
पाव न चालै पथ दुहेलो, आडा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापन कीन्हो, राख्यौ नहिं बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बोहो दिन बीता, अजहू आयो नाहि।
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लागी तन माहि।
कै तो जोगी जग मे नही, कैर विसारी मोइ।
काइ करूँ किल जाऊँरी सजनी नैण गुमायो रोइ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीरा व्याकुल विरहिणी रे, तुम बिनि तलफत प्राणि॥

(८)

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाइ परूँ मैं तेरी चेरी हौं।
प्रेम भगति को पैंडो ही न्यारा, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चँदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत मे जोत मिला जा॥

(९)

धूतारा जोगी एकरसूँ हँसि बोल।

जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अग भभूति गले अगछाला, तू जन गुढिया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजू मुनी मुख खोल।
चढती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, चेरी भई बिन मोल॥

(१०)

हरि बिन कूण गती मेरी।

तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।
आदि अन्त निज नाव तेरो, हीया मे फेरी।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति है तेरी।
यौ ससार बिकार सागर, बीच मे घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाधो, बूडत है बेरी।
बिरहणि पिवकी बाट जोवै, राखिल्यौ नेरी।
दासि मीरा राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी॥

(११)

माई म्हारो हरिहूँ न बूझया बात।

पड मासूँ प्राण पापी, निकसि क्यूँ गा जात।
पटा णा खोल्या मुखा णा बोल्या, साझ भया परभात।
अबोलणाँ जुग बीतण लागो कायारी कुसलात।
सावण आवण हरि आवण री, सुण्या म्हाणें बात।

घोर रैरणा बीजु चमका वार गिणता प्रभात ।
मीरा दासी स्याम राती, ललक जीवणा जात ॥

(१२)

को त्रिरहिनि को दुख जाणें हो ।
जा घट विरहा सोई लखिहै, कै कोई हरिजन मानै हो ।
रोगी अन्तर वैद बसत है, वैद ही ओखद जाणें हो ।
विरह दरद उरि अन्तरि माही, हरि बिनि सब सुख कानै हो ।
दुगधा कारण फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मानै हो ।
चात्रग स्वाति बूंद मन माही, पीव पीव उकलाणें हो ।
सब जग कूडो कंटक दुनिया, दरद न कोइ पिछाणें हो ।
मीरा के पति आप रमैया, दूजो नहिं कोइ छानै हो ॥

(१३)

होली पिया बिन लागा री खारी ।
सूनो गाव देस सब सूनो, सूनो सेज अटारी ।
सूनी बिरहन पिव बिन डोले, तज गया पीव पियारी ।
बिरहा दुख मारी ।
देस बिदेसा णा जावा म्हारो अणेशा भारी ।
गणता गणता घिस गया रेखा, आगरिया री सारी ।
आया णा री मुरारी ।
वाज्या भाभ मृदंग मुरलिया वाज्या कर इकतारी ।
आया बसन्त पिया घर णारी, म्हारी पीडा भारी ।
स्याम क्यारी विसारी ।
ठाडी अरज करा गिरधारी, राख्यां लाज हमारी ।
मीरा रे प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम री क्वारी ।
मणे लागी सरण तारी ॥

(१४)

री म्हा बैठ्या जागा, जगत सब सोवा ।।
विरहण बैठ्या रंगमहल मा, णेणा लड्या पोवा।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै ।
तारा गणता रैण विहाना, सुख घडियारी जोवा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछड्या णा होवा ।।

(१५)

हरि विण क्यू जिवा री माय ।।
स्याम बिना बौरां भया, मण काठ ज्यू खाय।
मूल औखद णा लग्या, म्हाणे प्रेम पीडा खाय।
मीण जल विछुड्या णा जीवा, तलफ मर मर जाय।
ढूढता बण स्याम डोला, मुरलिया धुण पाय।
मीरा रे प्रभु लाल गिरधर बेग मिलस्यो आय ।।

(१६)

स्याम मिलण रे काज सखी, उर आरति जागी ।।
तलफ तलफ कल ना पडा विरहानल लागी।
निसदिन पथ निहारा पिवरो, पलक ना पल भर लागी।
पीव पीव म्हा रटाँ रैण दिन लोक लाज कुल त्यागी।
विरह भवंगम डस्यां कलेजामा लहर हलाहल जागी।
मीरा व्याकुल अति अकुलाणी स्याम उमगा लागी ।।

(१७)

दरस विण दूखा म्हारा णैणा ।।
सबदा सुणता मेरी छतिया काँपा मीठो थारा बैण।

विरह बिथा कासूं री कह्यां पेठां करवत अैण।
कल णा परतां पल हरि मग, जोवां, भयां छमासी रैण।
थे बिछड्यां म्हां कलपां प्रभुजी, म्हारो गयो सब चैण।
मीरां रे प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण॥

(१८)

म्हारो जणम जणम रो साथी, थाने णा विसरया दिन राती।
थां देख्यां विण कल न पडता जाणे म्हारी छाती।
ऊंचा चढचढ पथ निहारया, कलप कलप अखियां राती।
भो सागर जग बधरा झूठा, झूठां कुलरा न्याती।
पल पल थारो रूप निहारां निरख निरखनी मदमाती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती॥

(१९)

म्हारो ओलगिया घर आज्यो जी।
तणरी ताप मिटया सुख पास्या, हिलमिल मगल गाज्यो जी।
घणरी धुण सुण मोर मगण भया, म्हारे आगण आज्यो जी।
चन्दा देख कमोदण फूला, हरख भया म्हारे छाज्यो जी।
रूम रूम म्हारो सीतल सजणी, मोहन आगण आज्यो जी।
सब भगतारा कारज साधा, म्हारा परण निभाज्यो जी।
मीरा बिरहण गिरधर नागर, मिल दुख दंदा छाज्यो जी॥

(२०)

यह विधि भक्ति कैसे होय॥
मन की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बांधि मोहि चंडाल।

क्रोध कसाई रहत घट मे, कैसे मिले गोपाल।
विलार विषमा लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत।
आपहि आप पुजाय के रे, फूल अँग न समात।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहाँ ठहरात।
जो तेरे हिय अन्तर की जानै, तासों कपट न बनै।
हिरदे हरि को नाम न आवै, मुख ते मनिया गनै।
हरि हितु से हेत कर, ससार आसा त्याग।
दास मीराँ लाल गिरधर सहज कर वराग॥

(२१)

अच्छे मीठे चाख चाख बेर लाई भीलणी ॥
ऐसी कहा अचारवती, रूप नही एक रती,
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।
जूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत जाण,
ऊँच नीच जाने नही रस की रसीलणी।
ऐसी कहा वेद पढी छिन मे विमाण चढी,
हरि जी सूँ बाँध्यो हेत वैकुंठ मे भूलणी।
दास मीराँ तरै सोई ऐसी प्रीति करै जोइ,
पतित–पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी॥

(२२)

लगन को नाव न लीजे री भोली॥
लगन लगी की पैंडो ही न्यारो, पाव धरत तन छीजै।
जै तू लगन लगाई चावै, तो सीस की आसन कीजै।
लगन लगी जैसे पतग दीप से वारि फेर तन दीजै।
लगन लगाई जैसे मिरघे नाद से, सनमुख होय सिर दीजै।

लगन लगई जैसे चकोर चन्दा से, अगनी भक्षण कीजे।
लगन लगी जैसे जल मछीयन सें, बिछडत तनही दीजे।
लगन लगी जैसे पुसप भवर सें, फूलन बीच रहीजे।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल चित दीजे।

(२३)

चालाँ अगम वा देस काल देख्या डराँ।
भराँ प्रेम रा होज, हस केल्या कराँ।
साधा सन्त रो सग ग्याण जुगता करा।
धरा सावरो ध्यान चित्त उजलो कराँ।
सील घूँघरा बाँध तोस नीरता कराँ।
साजा सोल सिंगार, सोणारो राखडाँ।
साँवलिया सूँ प्रीत ओराँ सूँ आखडा।

(२४)

भज मन चरण कँवल अवणासी।
जेताई दीसाँ धरण गगन मा तेताइ सब उठ जासी।
तीरथ बरता ग्याण कथता, कहा लियाँ करवत कासी।
यो देही रो गरब णा करणा, माटी मा मिल जासी।
यो ससार चहर री बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भर्यां था भगवा पहर्या, घर तज लया सन्यासी।
जोगी होया जुगत णा जाणा, उलट जणम फिर फासी।
अरज करा अबला कर जोर्‌या, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, कार्‌या म्हारो गासी।

(२५)

काई म्हारो जणम बारम्बार।
पूरबला कोई पुन्न खूँट्या माणसा अवतार।

बढ्या छिरण छिरण घटया पल पल, जातरणा कछ्च वार।
बिरछरा जो पात टूटया, लाग्या रणा फिर डार।
भौ समुन्द अपार देखा अगम ओडी धार।
लाल गिरधर तरण तारण, वेग करस्यो पार।
दासी मीरा लाल गिरधर, जीवरणा दिन च्यार।

(२६)

बन्दे गन्दगी मति भूल।
चार दिना की करले खूबी, ज्यूँ दाडिमरा फूल।
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रहना है बे हजूर।

(२७)

लगण म्हारी स्याम सूँ लागी, रणेरा णिरख सुख पाय।
साजा सिंगार सुहाणा सजनी, प्रीतम मिल्या धाय।
बरणा बरया बापुरो जणम्या जणम णसाय।
बरया साजण सावरो री, म्हारो चुडलो अमर हो जाय।
जणम जणम रो काण्हडो म्हारी प्रीत बुभाय।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी, कबरे मिलस्यो आय।
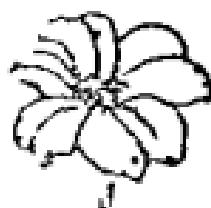
केशव-काव्य

१ रामचन्द्रिका

हनुमान-दूतत्व

देखि राम बरषा रितु आई।
रोम रोम बहुधा दुखदाई।
आसपास तम की छबि छाई।
राति द्यौस कछु जानि न जाई ॥१॥

मन्द मन्द धुनि सो घन गाजें।
तूर तार जनु आवझ बाजें।
ठौर ठौर चपला चमकै यो।
इन्द्रलोक-तिय नाचति है ज्यो ॥२॥

सोहैं घन स्यामल घोर घनै।
मोहैं तिनमें बकपाँति मनै।
सखावलि पी बहुधा जल स्यौं।
मानौ तिनको उगिलै बलस्यौ ॥३॥

सोभा अति सक्रसरासन मे।
नाना दुति दीसति है घन मे।
रत्नावलि सी दिविद्वार भनो।
वर्षागम बाँधिय देव मनो ॥४॥

घन घोर घने दसहू दिसि छाए।
मघवा जनु सूरज पै चढि आए।
अपराध बिना छिति के तन ताए।
तिन पीडन पीडित ह्वै उठि धाए ॥५॥

अति गाजव बाजत दुन्दुभि मानौ।
निरघात सबै पविपात बखानौ।
धनु है यह गोरमदाइन नाही।
सरजाल बहै जलधार वृथाही ॥६॥
भट चातक दादुर मोर न बोले।
चपला चमकै न फिरै खग खोले।
दुतिवन्तन को बिपदा बहु कीन्ही।
धरनी कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही ॥७॥
तरुनी यह अत्रि रिषीस्वर की सी।
उर मे हम चन्द्रप्रभा सम दीसी।
बरषा न सुनी किलकै किल काली।
सब जानत है महिमा अहिमाली ॥८॥

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुखमुख सुषमा ससी की,
नैन अमल कमलदल दलितनिकाई है।
'केसोदास' प्रबल करेनुकागमनहर,
मुकुत-सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठजू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥९॥

अभिसारिनि सी समझौ परनारी। सतमारग मेटन को अधिकारी।
मति लोभ-महामद-मोह-छई है। द्विजराज सुमित्र प्रदोषमई है ॥१०॥

बरनत केसव सकल कवि विषम गाढ तम सृष्टि।
कुपुरुषसेवा ज्यो भई सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥११॥

कलहंस कलानिधि खजन कंज कछू दिन 'केसव' देखि जिये।
गति आनन लोचन पाइनि के अनुरूपक से मन मानि लिये।

यहि काल कराल ते सोधि सबै हठिकै बरषा मिस दूरो कियै।
अब धौं बिन प्रान प्रिया रहिहै कहि कौन हितू अवलंबि हियै ॥१२॥

बीते बरषाकाल यों आई सरद सुजाति।
गए अँध्यारी होति ज्यों चारु चाँदनी-राति ॥१३॥

दंतावलि कुन्द समान गनौ।
चन्द्रानन कुन्तल भौंर घनौ।
भौंहैं धनु खंजन नैन मनौ।
राजीवनि ज्यों पद पानि भनौ ॥१४॥
हारावलि नीरज हीय रमैं।
है लीन पयोधर अम्बर मैं।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरैं।
हँसी गति 'केसव' चित्त हरैं ॥१५॥
श्रीनारद की दरसै मति सी।
लोपै तमता अपकीरति सी।
मानौ पतिदेवन की रति सी।
सन्मारग की समझौ गति सी ॥१६॥

लक्ष्मन दासी वृद्ध सी आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन को हमहि बीते बरषा राति ॥१७॥

तातें नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात।
कहिये वचन बुझाइकै कुसल न चाहो गात।
कुसल न चाहो गात चहत हो बालिहि देख्यो।
करहु न सीतासोध कामबस राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लहो सुख-सम्पति जातें।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है तातें ॥१८॥

लक्ष्मन किष्किन्धा गए, वचन कहे करि क्रोध।
तारा तब समझाइयो, कीन्हो बहुत प्रबोध ॥१९॥

बोलि लए हनुमान तबै जू।
ल्यावहु बानर बोलि सबै जू।
बार लगै न कहू बिरमाही।
एकु न कोउ रहै घर माही ॥२०॥

सुग्रीव-सँघाति, मुखदुति राती, 'केसव' साथहि सूर नए।
म्रकासबिलासी, सूरप्रकासी, तबही बानर म्राइ गए।
दिसि दिसि म्रवगाहन, सीतहि चाहन, जूथप जूथ सबै पठए।
नल नील रिक्षपति, म्रगद के सग, दक्षिन दिसि को बिदा भए ॥२१॥

बुधि-बिक्रम-व्यवसायजुत साधु समुझि रघुनाथ।
बल म्रनन्त हनुमन्त के मुंदरी दीन्ही हाथ ॥२२॥

चडि वरनि, छडि धरनि, मडि गगन धावही।
तक्षिन हुइ दक्षिन दिसि लक्षिन नहि पावही।
धीरधरन बीरबरन सिन्धुतट सुभावही।
नाम परग, धाम परम, राम करम गावही ॥२३॥

म्रगद–सीय न पाई म्रवधि बिनासी।
होहु सब सागरतटबासी।
जौ घर जैये सकुच म्रनन्ता।
मोहि न छोडै जनकनिहन्ता ॥२४॥

हनुमान–म्रगद रक्षा रघुपति कीनी।
सोध न सीता जल थल लीनी।
म्रालस छांडो कृत उर म्रानौ।
होहु कृतघ्नी जिनि, सिख मानौ ॥२५॥

म्रगद–जीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि
रावन विरथ कीन्हो सहि निज प्रानहानि।
हुते हनुमन्त बलवन्त तहाँ पाँच जन,
दीन्हे हूते भूपन वच्छक नररूप जानि।

आरत पुकारत ही राम राम बार,
लीन्हो न छडाइ तुम सीता अति भीत मानि।
गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ॥२६॥

सुनि सम्पाति सपक्ष ह्वै रामचरित सुख पाइ।
सीता लंका मांझ है खगपति दई बताइ ॥२७॥

हरि कैसो वाहन कि बिधि कैसो हेमहंस
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राममुद्रिकाविमान कैधौ
लक्ष्मन को बान छूट्यो रावन निसंक को।
गिरिगजगंड तें उडान्यो सुबरन-अलि
सीतापद-पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छूटी 'केसोदास' आसमान मे
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥२८॥

बीच गए सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमन्त तेहि, कढे उदर कहँ फारि ॥२९॥
उदधि नाकपतिसत्रु को उदित जानि बलवन्त।
अन्तरिक्षही लक्षि पद-अक्ष छुयो हनुमन्त ॥३०॥

कछु राति गए करि दैस दसा सी।
पुर मांझ चले वनराजविलासी।
जबही हनुमन्त चले तजि संका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तव लंका ॥३१॥
कहि मोहि उलंघि चले तुम को हो।
अति सूक्षम रूप धरे मन मोहो।
पठए केहि कारन कौन चले हो।
नर हो किधौ कोउ सुरेस भले हो ॥३२॥

हनुमान–हम वानर हैं रघुनाथ पठाए।
'तिनकी तरुनी अवलोन आए।
लंका–हति मोहि महामति भीतर जैये।
हनुमान–तरुनीहि हते कब तें सुख पैये ।।३३।।
लंका–तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करो घरही फिरि जैहौ।
हनुमन्त बली तेहि थापर मारो।
तजि देह भई तबही बर नारी ।।३४।।
लंका–धनदपुरी हुवै रावन लीनी।
बहुबिधि पापन के रस भीनी।
चितचतुरानन चिन्तन कीन्हो।
वरु करुना कहि मोकहँ दीन्हो ।।३५।।
जब दसकण्ठ सिया हरि लैहै।
हरि हनुमन्त बिलोकन ऐहैं।
जब वह तोहि हतै तजि सँका।
तब प्रभु होइ बिभीषन लंका ।।६६।।
चलन लगौ जबही तब कीजो।
मृतक सरीरहि पावक दीजो।
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमन्त निहारी ।।३७।।
तब हरि रावन सोवत देख्यो।
मनिमय पालिक की छबि लेख्यो।
तहँ तरुनी बहु भातिन गावैं।
बिच बिच आबझ बीन बजावैं ।।३८।।
मृतक चिता पर मानहु सोहै।
चहुँ दिसि प्रेतबधू मन मोहै।

जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो पुर सूनो ॥३९॥
कहूँ किनरी किनरी लै बजावै।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावै।
कहू जक्षिनी पक्षिनी लै पढावै।
नगीकन्यका पन्नगी को नचावै ॥४०॥

पियै एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रसाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढावै सुवा लै सुको सारिका को ॥४१॥
फिर्‌यो देखिकै राजसाला सभा को।
रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा को।
फिर्‌यो ओर चहूँ चितै सुद्धगीता।
बिलोकी भली सिसुपामूल सीता ॥४२॥
धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृनाली मनो पंक ते काढि डारी।
सदा राम रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुक्खदानी ॥४३॥
ग्रसी बुद्धि सी चित्तचिंतानि मानौ।
किधौं जीभ दन्तावली मे बखानौ।
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष-भीनी ॥४४॥
किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रबीनी।
मनो संबर-स्त्रीन मे कामबामा।
हनुमान ऐसी लखी रामरामा ॥४५॥

तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुक्ख पायो।
सबे अग लै अग ही मे दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रु धारा बहायो ॥४६॥
रावण—सुनौ देवी मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तौ राम काजै न कीजै।
बसै दडकारन्य देखै न कोऊ।
जु देखै महा बावरो होइ सोऊ ॥४७॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न-मुण्डीनही को सदा है।
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसै चित्त दडी जटी मुण्डधारी ॥४८॥
तुम्हैं देखि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसो सदा ताहि जानै।
महा निर्गुनी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यो न कीजै ॥४९॥
अदेवीनि देवीनि की होहु रानी।
करै सेव बानी मघौनी मृडानी।
लियें किंनरी किंनरी गीत गावै।
सुकेसी नचै उर्बसी मान पावै ॥५०॥
तृन बिच देइ बोली सीय गभीर बानी।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी।
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्म न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यो न ज्यौं मूल नासै ॥५१॥
अति तनु धनुरेख तनु नाकी न जाकी।
खल सर-खरधारा क्यो सहै तिच्छ ताकी।

बिडकन धन घूरे भक्षि क्यो बाज जीवै।
सिवसिर ससिश्री को राहु कैसे सु छीवै ॥५२॥
उठि उठि ह्याँ ते भागु तौलौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौं न लागे।
विकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निकट मृतक तोको रोष मारे न मेरो ॥५३॥

अवधि दई द्वै मास की कह्यो गकसिन बोलि।
ज्यो समुझै समुझाइयो जुक्तिछुरी सो छोलि ॥५४॥

देखि-देखिकै असोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अग आगि ह्वै रह्यो।
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आसपास देखिकै उठाइ हाथ कै लई ॥५५॥

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ।
यह कह्यो लखि तब ताहि। मनिजटित मुँदरी आहि ॥५६॥
जब बाँचि देख्यो नाउ। मन पर्‌यो सभ्रम भाउ।
आवाल ते रघुनाथ। यह घरचो अपने हाथ ॥५७॥
बिछुरी सु कौन उपाय। केहि आनियो यहि ठाउँ।
सुधि लहौं कौन प्रभाउ। अब काहि बूझन जाउँ ॥५८॥
चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास।
तरुसाख बैठो नीठि। तब पर्‌यो बानर दीठि ॥५९॥
तब कह्यो को तूँ आहि। सुर असुर मो तन चाहि।
के जक्ष पक्ष-विरुप। दसकंठ बानर-रूप ॥६०॥
कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।
कहि बेगि बानर पाप। नतु तोहि दैहौं साप ॥६१॥
तब वृक्षसाखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि।
सन्देस चित्त महँ चाइ। तब कही बात बनाइ ॥६२॥

कर जोरि कह्यो हौं पौनपूत।
जिय जननि जानि रघुनाथदूत।
रघुनाथ कौन, दशरथ्थनन्द।
दशरत्थ कौन, अजतनयचन्द ॥६३॥
केहि कारन पठए यहि निकेत।
निज देन लेन सदेस हेत।
गुन रूप सील सोभा सुभाव।
कछु रघुपति के लक्षन बताव ॥६४॥
अति जदपि सुमित्रानन्द भक्त।
अति सेवक है अति सूर सक्त।
अरु जदपि अनुज तीनौ समान।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥६५॥
ज्यों नारायनउर श्री बसन्ति।
त्यो रघुपतिउर कछु दुति लसन्ति।
जग जितने है सब भूमिभूप।
सुर असुर न पूजें रामरूप ॥६६॥

सीता—मोहिपरतीति यहि भाँति नहि आवई।
प्रीति कहि धौ सु नर-वानरनि क्यो भई।
बात सब बर्नि परतीति हरि त्यो दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥६७॥

आँसु बरषि हियरा हरषि सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि हियमुद्रिकहि बरनति बहु भाइ ॥६८॥

यह सूरकिरन तम-दुख्खहारि।
ससिकला किधौं उर-सीतकारि।
कल कीरति सी सुभ सहितनाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम ॥६९॥

कै नारायन-उर सम लसन्ति।
सुभ अकन ऊपर श्री बसन्ति।
बर बिद्या सी आनन्ददानि।
जुतअष्टापद मन सिवा मानि ॥७०॥
जनु माया अक्षरसहित देखि।
कै पत्री निस्चयदानि लेखि।
पियप्रतीहारिनो सी निहारी।
'श्रीरामोजय' उच्चारकारि ॥७१॥
पिय पठई मानो सखि सुजान।
जगभूषन को भूषन-निधान।
निज आई हमको सीख देन।
यह किधौ हमारो मरम लेन ॥७२॥
सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥७३॥
बहुवर्ना सहजप्रिया, तमगुनहरा प्रमान।
जगमारग दरसावनी, सूरजकिरन समान ॥७४॥
श्री पुर मे बनमध्य हों तूं मग करी अनीति।
कहि मुदरी अब तियन की को करिहै परतीति ॥७५॥
कहि कुसल मुद्रिके रामगात।
पुनि लक्ष्मनसहित समान तात।
यह उतरु देति न बुद्धिवत।
केहि कारन धौं हनुमन्त सन्त ॥७६॥
हनुमान—तुम पूंछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम।
ककन की पदवी दई तुम बिन याकहँ राम ॥७७॥
दीरघ दरीन बसै 'केसोदास' केसरी ज्यो,
केसरी को देखि बनकरी ज्यो कँपत है।
बासर की संपति उलूक ज्यो न चितवत,
चकवा ज्यो चन्द चितै चौगुनो चँपत है।

केका सुनि ब्याल ज्यो बिलात जात घनस्याम,
घनन की घोरन जवासो ज्यो तपत है।
भौर ज्यो भँवत वन जोगी ज्यो जगत रैनि,
साकत ज्यो नाम राम तेरोई जपत है ॥७८॥

राजपुत्रि यक बात सुनौ पुनि।
रामचन्द्र मन माहँ कही गुनि।
राति दोह जमराम-जनी जनु।
जातनानि तन जानत कै मनु ॥७६॥

दुख देखे सुख ह्वोहिगो, सुख्ख न दुख्खविहीन।
जैसे तपसी तप तपै, होत परमपद लीन ॥८०॥
बरषा-वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन मे कालभट भेटि भेटियत वाम ॥८१॥

सीता—दुख्ख देखिकै देखिहौं सब सुख आनन्दकन्द।
तपन-ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतलचन्द ॥८२॥
अपनी दसा कहा कहौं दीपदसा सी देह।
जरत जाति वासर निसा 'केसव' सहित सनेह ॥८३॥

हनुमान—सुगति सुकेरि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदति सुश्रोनि।
दरसावैंगो बेगिही तुमको सरसिज-जोनि ॥८४॥
कछु जननि दै परतीति जासों रामचन्द्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई यह कहि सुजस तव जग गावई।
सब काल ह्वै हौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥८५॥
कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जबुमाली मंत्रिसुत अरु पच मंत्रि सँघारियो।
रन मारि अक्षकुमार बहु विधि इन्द्रजित सो जुद्ध कै।
अति ब्रह्मअस्त्र प्रमान मानि सो बरय भो मग सुद्ध कै ॥८६॥

२. अश्वमेघ की गाथ

बिस्वामित्र बसिष्ठ स्यौं एक समय रघुनाथ ।
आरंभी 'केसव' करन अस्वमेघ की गाथ ।।१।।

मैथिली समेत तो अनेक दान मैं दियो ।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो ।
सीय-त्याग पाप तें हिये सु हौं महा डरौं ।
और एक अस्वमेध जानकी बिना करौं ।।२।।

धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरनि के साथ ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ।।३।।

करियै जुतभूषन रूपरई ।
मिथिलेससुता इक स्वर्नमई ।
रिषिराज सबै रिषि बोलि लिये ।
सुचि सो सब यज्ञविधान किये ।।४।।
हयमालन ते हय छोरि लियो ।
ससियर्न सो 'केसव' सोभरयो ।
स्रुति स्यामल एक बिराजत है ।
अलि स्यौ सरसीरुह लाजत है ।।५।।

पूजि रोचन स्वच्छ अक्षत पट्ट बाँधिय भाल ।
भूमि भूषन सत्रुदूषन छाडियो तेहि काल ।
संग लै चतुरंग सैनहि सत्रुहता साथ ।
भाँति भाँतिन पान दै पठए सु श्रीरघुनाथ ।।६।।

जात है जित वाजि 'केसव' जात हैं तित लोक ।
बोलि विप्रन दान दीजत जत्रतत्र सभोग ।
बेनु बीन मृदंग बाजत दुन्दुभी बहुभेव ।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव ।।७।।

राघव की चतुरग चमू चय को गनै 'केशव' राजसमाजनि।
सूर तुरगन के उरझै पग तु ग पताकनि की पटसाजनि।
टूटि परै तिनतें मुकता धरनी उपमा बरनी कविराजनि।
बिंदु किधौ मुखफेनन के किधौ राजसिरी स्रवै मगललाजनि ॥८॥

राघव की चतुरग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रतापहुतासन-धूम सो केसवदास' क्कास न माई।
मेटिकै पच प्रभूत किधौ बिधि रेनुमयी नव रीति चलाई।
दुख्ख-निवेदन को भुवभार को भूमि किधौ सुरलोक सिधाई ॥९॥

दिसि विदिसिन अवगाहिकै, सुख ही 'केसवदास'।
बालमीकि के आश्रमहि, गयो तुरग अकास ॥१०॥

दूरिहि तें मुनिबालक धाए।
पूजित वाजि विलोकन आए।
भाल को पट्ट जही लव बाँच्यो।
बाँधि तुरगम जरस राच्यो ॥११॥
घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी।
कौनेहि रे यह बाधियो बाजी।
बोलि उठे लव मै यहि बाँध्यो।
यो कहिकै धनुसायक साँध्यो ॥१२॥
मारि भगाइ दए सिगरे यो।
मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्यो।
जोधा भगे बीर सत्रुघ्न आए।
कोदड लीन्हे महा रोष छाए।
ठाढो तहाँ एक बालै विलोक्यो।
रोक्यो तही जोर नाराच मारयो ॥१३॥

शत्रुघ्न—बालक छाँडि दै छाडि तुरगम।
तोसो कहा करौ सगर सगम।

ऊपर बीर हिये करुना रस।
बीरहि विप्र हते न कहू जस ॥१४॥
लव-कछु बात बढ़ी न कहौ मुख थोरें।
लव सो न जुरौ लवनासुर मोरें।
द्विज-दीपन ही बल ताको सँघार्‌यो।
मरही जु रह्यो सु कहा तुम मार्‌यो ॥१५॥
रामबन्धु बान तीनि छोडियो त्रिसूल से।
भाल मे बिसाल ताहि लागियो ते फूल से।
घात कीन्ह राज तात गात तें कि पूजियो।
कौन सत्रु तें हत्यो जु नाम सत्रुहा लियो ॥१६॥
रोष करि बान बहु भाँति लव छडियो।
एक ध्वज, सूत जुग, तीन रथ खडियो।
सस्त्र दसरथ्थसुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सियपुत तिल तूलसम खडरै ॥१७॥
रिपुहा तब बान बहै कर लीन्हो।
लवनासुर को रघुनन्दन दीन्हो।
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाइ गिर्‌यो धरनी महँ छत्री ॥१८॥
मोहे लव भूमि परे जबही।
जै-दुन्दुभि बाजि उठे तबही।
भू ते रथ-ऊपर आनि धरे।
सनुघ्न सु यो करुनाहि भरे ॥१९॥
घोरो तबही तिन छोरि लयो।
सत्रुघ्नहि आनन्द चित्त भयो।
तैंके लव का ते चले जबही।
सीता पहँ बाल गए तबही ॥२०॥

सुनि मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरग सेन भगाइकै सब जीतियो वह श्राजि।
उर लागि गो सर एक को भुव मे गिरो मुरझाइ।
तब बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुन्दभीन बजाइ ॥२१॥

सीता गीता पुत्र की सुनिकै भई अचेत।
मनौ चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत ॥२२॥

कुश-रिपुहि मारि सघारि दल जम तें लेहूँ छँडाइ।
लवहिं मिलैं हौं देखिहौं माता तेरे पाइ ॥२३॥

गाहियो सिधु सरोवर सो जेहि बलि बलि बर सो बर पेर्यो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेर्यो।
साल समूल उखारि लिये लवनासुर पीछे लैं धाइ सो टेर्यो।
राघव को दल मत्त करीसुर अंकुस दै कुस 'केसव' फेर्यो ॥२४॥

कुस की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे सत्रुघ्न।
दीप बिलोकि पतग ज्यों,जदपि भयो बहु बिघ्न ॥२५॥

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुस।
उर माँझ हयो सर सुद्ध निरंकुस।
ते गिरे रथ-ऊपर लागत ही सर।
गिरि-ऊपर ज्यों गजराज-कलेवर ॥२६॥

जूझि गिरे जबही अरिहा रन।
भाजि गए तबही भट के गन।
काढि लियो जबही लव को सर।
कठ लग्यो तबही उठि सोदर ॥२७॥

मिले जु कुस लव कुसल सो, बाजि बाँधि तरुमूल।
रन महिं ठाढे सोभिजे, पसुपति गनपति तूल ॥२८॥

३ कवि-प्रिया (ऋतु-वर्णन)

फूली लतिका ललित तरुनितर, फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर।
फूली कामिनि, कामरूप करि कतनि पूजहिं।
सुक सारो कुल हँसै, फूलि कोकिल कल कूजहिं।
कहि 'केसव' ऐसी फूल महँ सूल न फूलहिं लाइयै।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइयै ॥१॥

'केसवदास' अकास अवनि वासित सुवास करि।
बहति पवन गति मंद गात मकरंद-बिंदु धरि।
दिसि विदिसनि छवि लागि, भाग पूजित पराग वर।
होत मध हिय मध बधिर भौंरा बिदेसि नर।
सुनि सुखद, सुखद सिख सीखियत, रति सिखई सुख-साख में।
चर विरहिन बधत बिसेष करि कस्म बिसिष बैसाख में ॥२॥

एक भूतमय होत भूत, भजि पचभूत भ्रम।
अनिल, अंबु, आकास, अवनि ह्वै जात आगि सम।
पथ थकित, मद मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर कर-कोप, उदर-तर केहरि सोवत।
प्रिय प्रबल जीव इहि विधि अबल, सकल बिकल जल थल रहत।
तजि 'केसवदास' उदास मति, जेठ मास जेठे कहत ॥३॥

'केसव' सरिता सकल मिलित सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन तरवर सोहैं।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुं ओरन।
मनभावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन।
इहि रीति रमन रमनो सकल लागे रमन रमावन।
प्रिय गमन करन को कहै गमन सुनिय नहिं सावन ॥४॥

घोरत घन चहुँ ओर घोष निर्घोषनि मडहि।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छडहि।
झिल्लीगन-झकार पवन झुकि झुकि झकझोरत।
बाघ सिंघ गुजरत पुज-कुजर तरु तोरत।
निसिदिन विसेप निरसेप मिटि जात, सु ओली ओढियै।
निज देस पियूप, विदेस विप भादौं भवन न छोडियै ॥५॥

प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवहि।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग अपवर्गनि पावहि।
छत्रनि दै छतपति लेत भुव लै सँग पडित।
'केसवदास' अकास अमल, जल जलजनि मडित।
रमनीय रमन रजनीस रुचि रमारमन हू रासरति।
कल केलि कलपतरु क्वार महँ कत न करहु विदेस-मति ॥६॥

बन, उपबन, जल, थल, अकास दीसत दीपगन।
सुख ही सुख सुखराति जुवा खेलत दपति-जन।
देव-चरित्र बिचित्र चित्र चित्रित आँगन घर।
जगति जगत जगदीस-ज्योति, जगमगत नारि नर।
दिन दान न्हान गुनगान-हरि जनम सुफल करि लीजियै।
कहि 'केसवदास' विदस-मति कँत न कातिक लीजियै ॥७॥

मानस मे हरि-अस कहत यासो सब कोऊ।
स्वारथ परमारथनि देत भारथ महँ दोऊ।
'केसव' सरिता सरनि फूल फूले सुगन्ध गुर।
कूजत कल कलहस, कलित कलहसनि के सुर।
दिन परम नरम सीतल गरम करम करम यह पाइ रितु।
करि प्राननाथ परदेस कहँ मारगसिर मारग न चितु ॥८॥

सीतल जल, थल बसन, असन सीतल अनरोचक।
'केसवदास अकास अवनि सीतल असु-मोचक।

तेल, तूल, तामोर, तपन, तापन, नव नारी।
राज रक सब छाँडि करत इनहीं अधिकारी।
लघु द्योस दीह रजनी रमन होत दुसह दुख रूस मे।
यह मन क्रम वचन विचारि पिय पथ न बूझिय पूस मे॥९॥

वन, उपवन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत।
'केसव' भूले भँवर भरे बहु भाइनि डोलत।
मृगमद, मलय, कपूरघूर घूसरित दसौ दिसि।
ताल, मृदग, उपग सुनत सगीत गीत निसि।
खेलत वरात सतत सुघर सत असत अनत गति।
घर नाह न छाँडिय माघ मे जो मन माँहि सनेह-मति॥१०॥

लोकलाज तजि राज रक निरमक विराजत।
जोइ आवत सोइ कहत करन पुनि हसत न लाजत।
घर घर जुवति जुवनि जोर गहि गाँठिनि जोरहि।
बसन छीनि मुख माँहि, आँजि लोचन तिन तोरहि।
पटवास सुवास अकास उडि भुवमडल सब मडियै।
कहु 'केसवदास' विलासनिधि फागु न फागुन छडियै॥११॥
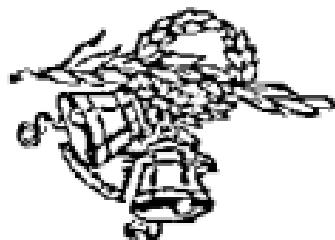
(नख-शिख वर्णन)

कोमल अमलता की किधौं यह रंगभूमि,
सोभिजतु अगनु कि सोभा के सदन को।
अरुन दलनि पर कीना कि तरनि कोप,
जोत्यो किधौ रजोगुनु राजिव के गन को।
पलु पलु प्रनय करत किधौं 'केसोदास',
लागि रह्यो पूरवानुरागु पिय-मन को।
एरी वृषभानु की कुमारि तेरे पाइँ सोहै,
जावक को रंगु कै सुहागु सौतिजन को ॥१॥

गंगाजू के जल मध्य कण्ठ के प्रमान पैठि,
जपि जपि सूर-मन्त्र आनन्द बढ़ावही।
'केसोदास' घाम जल सीत सहि एकरस,
एक पाइँ ठाढे कोटि कलप नसावही।
कोमल अमल भए सुन्दर सुबास भए
कमला-निवास मनु जदपि अमावही।
पायो परब्रह्मपद पदुमनि पदुमिनि
तेरे पद पदवी को पदु पै न पावही ॥२॥

गतिनि के हार की बिहार पहरु-रूप
किधौं प्रतिहार रतिपति के निलय के।
हंस गतिनाइक कि गूढ गुनगाइक कि
श्रवन-सुहाइक कि माइक है मय के।
'केसव' कमलमूल अलिकुल कुनित कि
मनु प्रतिधुनित सुमनित निचय वे।
हाटक घटित मनि स्यामल जटित पग,
नूपुर जुगल किधौं बाजे हैं बिजय के ॥३॥

कोमल कमलमूल नूपुर नवल अलि-
कुलनि की माला किधौं 'केसव' सुभाइ की।
चरन-सरोवर समीप किधौं दोछिया
कनक कलहंसनि की बैठकें बनाइ की।
राज हंस सारस की जीतो गति मेरी मति
बाँध्यौ जयककन की सोभा सुखदाइकी।
अभिल सुमिल सीढी मदन-सदन की कि
जगमगै पग जुग जेहरी जराइ की ॥४॥

'केसोदास' गोरे गोरे गोल काममूल-हूर
भामिनी के भुजमूल भाइ से उतारे हैं।
सोभा सुख बरसत माखन से दरसत
परसत कचन से कठिन सुधारे हैं।
बलया बलित बाहु देखि रीझै हरिनाहु,
मानौं मन पासिवे के पासियै बिचारे हैं।
मलिन मृनाल मुख पक मे दुराए दुख
देखौ जाइ छातिनि मे छेद कै कै डारे हैं ॥५॥

गजरा बिराजें गजमोतिनि के अति नीके
जिनकी अजीत जोति 'केसोदास' गाई है।
बलय बलित कर कचन कलित मनि
लाल की ललित पौंची पौंचिनि बनाई है।
सेत पीत हरित मलक मलकात अति
स्यामल सुमिल मेरे स्यामले को भाई है।
मानौ सूर सोम की कला सकेलि आपनीयौ
आपुने सखा को सुख पाइ पहिराई है ॥६॥

सुर नर प्राकृत कबित्त रीति ग्रारभटी
सातुकी सु भारती की भारतीयौ भोरी को।
किधौ 'केसोदास' कलगानता सुजानता
निसकता सो वचन-बिचित्रता किसोरी की।
बीना बेनु पिक सुर सोभा की त्रिरेख रुचि
मन-क्रम-बचन कि पिय-चित चोरी की।
ग्रबुसाई की मोहै ग्रविकाऊ देखि देखि
।।ग्रवुज नयन कवु ग्रीवा गोरी गोरी की ।।७।।

ग्ररुन ग्रधर ग्रति सुबुधि सुधा के घर
कोमल ग्रमल दल दुति छीनि लीनी है।
'केसव' सुबास मदहासजुत कौन काम
बिद्रुम कठोर फ्टु बिब मति हीनो है।
सूक्षम सुरेख ग्रति सूधी सूधी सबिसेष
चतुर चतुरमुख रेखा रचि कीनी है।
मानौ मेंन गुरु हरिनाइ के नयन गनि
गनि गनि लीबे कहुँ बिद्या गनि दीनी है ।।८।।

सूक्षम सुबेष सूधी सुमन बलीसो किधौ
लक्षन बतीस हू की मूरति बिसेखियै।
राती है रतीक रुचि सेत सब किधौं ससि
मडल मे सुरनि की सभा ग्रवरेखियै।
किधौं पिय-जुगति ग्रखडता के खडिबे कौं
खडन को 'केसव' तरक-जुल लेखियै।
दीनी दूनो कला बिधि तेरे मुखचद कौं
सु न्याइ ही ग्रकासुचन्दु मन्ददुति देखियै ।।९।।

किधौ मुखकमल मे कमला की जोति, किधौ
चारु मुखचन्द्र चन्द्र-चन्द्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचन मरीचिका-मरीचि किधौं
रूप की रुचिर रुचि रुचि सो दुराई है।
सौरभ की सोभा कि दसन घन-दामिनी कि
'केसव' चतुर चित्त ही की चतुराई है।
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरे
मोहन की मोहनी कि गिरा की गुराई है॥१०॥

काम की दुहाई कि सुहाई सखी माधुरी की
इन्दिरा के मन्दिर मे भाँई उपजाति है।
मुरनि की रोदरी कि मोद की कुसोदरी कि
चातुरी की मातु ऐसी बातनि राजति है।
राग-रजधानी अनुराग ही की ठकुरानी
मोहे दधिदानी 'केसो' कोकिला लजति है।
ऐरी मेरी ब्रजरानी तेरी बर बानी किधौं
बानी ही की बीन सुख मुख मे बजति है॥११॥

पिय-मन-दूत किधौं प्रेमरथ-सूत किधौं
भँवर अभूतबपु बासु के सुरग हैं।
चितवत चहूँ ओर चित्तचोर स्याम
मुखचन्द के चकोर किधौं केसव' कुरग हैं।
बान-मद-भजन कै सेलिबे के खजन कि
रजन कुँवर वामदेव के तुरग हैं।
सोभा-सर-लीन मीन कुवलय-रस-भीन
नलिन नवीन किधौं नैन बहुरग हैं॥१२॥

किधौ लागी पकज के ग्रक पकलीक किधौं
'केसव' मयक ग्रक ग्रकित सुभाइ को।
जन्त्र है सुहाग को कि मन्त्र ग्रनुराग को कि
मत्रनि कौं बीजु ग्रघ ऊरध ग्रभाई को।
ग्रासनु सिंगार को कि काम को सरासनु कि
सासनु लिख्यो है प्रेम पूरन प्रभाइ को।
रोष रुष वेष विष पियूष विसेष मय,
भामिनी की भौंह किधौं भौनु हाइ भाइ को ॥१३॥

'केसव' कसा किधौं ग्रनग की सुरगमुखी
लोचन-कुरगनि की चाल हटकति है।
पिय-मन पासिबे कौं पासि सी पसारी किधौं
उपमा कौ मेरी मति भुव भटकति है।
तरनि-तनूजा खेलै तारानाथ-साथ किधौ
हाथ परी तम को तरुनि मटकति है।
सुनि लोललोचनी नवल निधि नेहनि की
ग्रलका कि ग्रलिक ग्रलक लटकति है ॥१४॥

ग्रहनि मे कीन्यो गेहु सुरनि दै देस्यो देहु
सिव सो कियो सनेहु जाग्यी जुग चारचो है।
तपिन मे तप्यो तपु जलधि मे जप्यो जपु
'केसोदास' वपु-मास मासप्रति गारयो है।
उडगन-ईसु द्विज-ईसु ग्रोपधीसु भयो
जद्यपि जगत-ईस सुधा सो सुधारचो है।
सुनि नन्दनन्द-प्यारी तेरे मुखचन्द सम
चन्द पैं न भगो कोटि छन्द करि हारचो है ॥१५॥

कोमल अमल चल चीकने चिलक चारु
चिताए वें चितु चक चौधिजत 'केसौदास'।
सुनहु छबीली राधे छूटें तें छुवें छवानि
कारे सटकारे हैं सुभाव ही सदा सुबास।
सुनि कै प्रकास उपहास निसिबासर कें
कीनो है सुकेसी बसवासु जाइ कै अकास।
जद्यपि अनेक चन्द साथ मोरपक्ष तऊ
जीत्यो एक चन्दमुख-रुख तेरे केसपास ॥१६॥

बेनी पिकबैनी की त्रिवेनी सी बनाइ गुही
कंचन कुसुम रुचि लोचननि पोहियें।
'केसोदास' फैली रही फूलि सीसफूल-दुति
फूल्यो तनु मनु मेरो म्यायें हरि मोहियें।
बदा जगमगतु जराय-जर्‍यो ताकी जोति
जीत्यो है अजित उपमा न आन टोहियें।
मानौं इन पाँवडेनि पाइँ धरि आए दोऊ
सोहत सुहागु सिरभागु भाल सोहियें ॥१७॥

किधौं गजराजनि को राजति है अंकुस सी
चरन-बिलासनि को आरस सजति है।
किधौं राजहंसनि को सकासक 'केसोदास'
किधौं कलहंसनि की लाज सी लगति है।
ललित अनग-तरु बलित सिंगार-बेलि
फूलि फूलि हाव-भाव-फलनि फलति है।
किधौं नन्दलाल लोल लोचन की शृंखला कि
तेरी लोललोचनी अलोल अति गति है ॥१८॥

तारा सी कान्ह तराइन-सग
अचन्द्रकला निसि चन्द्रकला सी।
दामिनी सी घनस्याम-समीप लसै
उर-स्याम तभाल लता सी।
आधि को औषधि काहे कौं 'केसव'
काम के धाम मे दीपसिखा सी।
सोने की सीक सी दूरि भएँ तें
मिले उर मे उरहार-प्रभा सी ॥१६॥

महि मोहन-मोहिनी-रूप महिमा रुचि रूरी।
मदन-मन्त्र की सिद्धि प्रेम की पद्धति पूरी।
जीवन-मूरि विचित्र किधौं जग जीव मित्र की।
किधौं चित्त की वृत्ति मूर्ति अभिलाप-चित्र की।

कहि 'केसव' परमानन्द की आनन्द-सक्ति किधौं धरनि।
आधार-रूप भव धरन कौं राधा व्रजबाधा-हरनि ॥२०॥

कवि-परिचय

१—कबीरदास

महात्मा कबीरदास की जन्म-तिथि, माता-पिता, जाति, धर्म आदि के बारे में अभी तक कोई स्पष्ट बात मालूम नहीं हुई है। 'भक्तसिन्धु' के अनुसार उनका जन्म सं० १४५१ में तथा 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' के अनुसार १५५७ में माना जाता है। 'कबीर कसौटी' में उनका जन्म संवत् १४५५ दिया गया है। जन्म-तिथि की ही तरह उनके माता-पिता का भी पता नहीं मिलता। जनश्रुति यह है कि वे किसी विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। लोकलाज से उसने उन्हें काशी के लहरतारा तालाब के पास छोड़ दिया था। नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति वहाँ से निकले और उन्होंने इस परित्यक्त बालक को उठा लिया तथा अपने बालक की ही भाँति पालन-पोषण किया। जुलाहा परिवार में पालित पोषित होने के कारण वे जुलाहा कहलाये—'तू बामन मैं कासी का जुलाहा'।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। लेकिन वे अक्षर ज्ञान से बहुत आगे सच्चे अर्थों में ज्ञानी, कर्मठ और उपासक थे। उनकी कविता में ज्ञान का दर्शन पर्याप्त मात्रा में है। यह ज्ञान उन्होंने सत्सङ्ग और शास्त्र-चर्चा से प्राप्त किया था। उन्होंने विवाह किया था और उनकी पत्नी का नाम लोई था। लोई से उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुए थे। उनके नाम थे—कमाल और कमाली।

कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यद्यपि तुलसीदासजी और रैदासजी भी इन्हीं रामानन्द के ही शिष्य थे तथापि कबीरदासजी

ने अपना एक पृथक् पन्थ चलाया था, जिसमें निर्गुण निराकार की उपासना प्रधान थी। कबीर ने राम नाम की दीक्षा रामानन्दजी से ली थी। किन्तु इनके राम तुलसी और रामानन्द के साकार अवतारी राम से भिन्न निर्गुण निराकार राम थे। इधर कबीर के मुसलमान अनुयायी उन्हें सूफी फकीर शेख तकी के शिष्य मानते हैं और कहते हैं कि उन्होंने शेख तकी से दीक्षा ली थी।

कबीर लोदी वंश के सुलतान सिकन्दर शाह के समकालीन थे। कई विरोधियों ने सुलतान को इनके विरुद्ध भड़का दिया। अतः बादशाह ने इन्हें अनेक कष्ट दिये लेकिन कबीर का बाल भी बाँका नहीं हुआ। कबीरदास जन्म से हिन्दू किन्तु कर्म से मुसलमान थे। उन्होंने अपनी वाणी में भी हिन्दू मुसलमान की एकता का सन्देश दिया है। पूजा-पाठ रोज़ा-नमाज तीर्थ-हज्ज आदि आडम्बर का वे हमेशा विरोध करते रहते थे। अतः न हिन्दू उनसे पूरी तरह सन्तुष्ट रहे न मुसलमान। लोगों के इस विश्वास को गलत सिद्ध करने के लिये कि काशी में मरने से स्वर्ग और मगहर में मरने से नर्क मिलता है। वे मृत्यु के समय स्वयं मगहर गये और वहाँ शरीर छोड़ा। उनका मृत्यु संवत् १५७५ माना जाता है। कबीर की वाणियों का संग्रह कबीर बीजक नामक ग्रन्थ में है। उसके तीन खण्ड हैं—रमेणी, सबद, साखी। उनके पदों को सबद कहा जाता है और दोहों को साखी।

यद्यपि कबीरदासजी ने रामानन्द से दीक्षा ली थी किन्तु रामानन्द की भाँति उनके राम 'दुष्ट दलन रघुनाथ' नहीं थे। राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से था। उन्होंने 'निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई' का उपदेश दिया है। उनकी राम भावना भारतीय ब्रह्म भावना से मिलती जुलती है। वे केवल शब्दों को लेकर झगड़ा खड़ा करने वालों में नहीं थे। अपने भाव व्यक्त करने के

लिये उन्होंने उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि सभी शब्दों का उपयोग किया है। उन्होंने अपने भाव प्रकट करने भर से मतलब रखा है, शब्दों की चिन्ता नहीं की। ब्रह्म के लिये उन्होंने राम, रहीम, अल्ला, सत्य, गोविन्द, नाम, साहब आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने कहा भी है 'अपरम्पार का नाम अनन्ता'। यद्यपि उनकी रचनाओं में भारतीय ब्रह्मवाद का ही पूरा पूरा ढांचा पाया जाता है तथापि उन्होंने उसकी प्राय वही बातें कही हैं जो मुसलमानी एकेश्वरवाद से मेल खाती हैं। उनका ध्येय सर्वदा हिन्दू मुस्लिम एकता रहा। धर्म के मूल सिद्धान्तों का पक्ष लेकर उन्होंने मूर्ति पूजा, नमाज, छापा, तिलक आदि बाह्याचारों का कड़ा विरोध किया है।

कबीरदासजी ने कविता के लिये कविता नहीं लिखी। वे सत्य शोधक थे। अत उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है। उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय रहा है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवन-धारा के प्रवाह से अलग नहीं है। उनकी प्रतिभा हृदय-समन्वित है। अत उनकी बातों में एक ऐसी शक्ति है जो दूसरों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। यद्यपि उन्होंने अक्खड़ ढङ्ग से बेलाग बातें कही हैं तथापि उनकी बातों में एक ऐसा मिठास है जो खरी-खरी कहनेवालों की ही बात में होती है। इसीलिये उनकी बहुतसी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ गई हैं। हार्दिक उमग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गई है वह अत्यन्त भावापन्न है। यही उनकी प्रतिभा का चमत्कार है।

कबीरदासजी ने अपनी उक्तियों पर बाहर बाहर से अलङ्कारों का मुलम्मा चढाने का प्रयत्न नहीं किया। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी वाली कला उनमें ढूढने से भी नहीं मिलेगी। सन्त कवियों में कबीरदासजी का स्थान सर्वोच्च है। उनका काव्य मुक्तक

क्षेत्र के अन्तर्गत है। उसमें भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है, कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुन्दरदास आदि निर्गुण भक्त कवियों में सहज ही सब से बढ़ कर है। रहस्यवादी कवियों में भी उनका स्थान सब से ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं की कविताओं में मिलता है। उनकी रचनाओं के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

दिनभर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल॥
मूड मुँड़ाये हरि मिले, तो हर कोई लेय मुँडाय।
बार-बार के मूँड़ते, भेड न बैकुण्ठ जाय॥
जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत कथो गियानी॥

२—सूरदास

महात्मा सूरदास की जन्म और मृत्यु तिथि के बारे में भिन्न भिन्न मत है। उनका सही जीवनवृत्त अब तक भी मालूम नहीं हो सका है। उनका जन्म सवत् १५३५ और मृत्यु सवत् १६४२ के आस पास माना जाता है। इसी प्रकार उनके जन्म-स्थान, माता-पिता, जाति, कुल, गोत्र आदि के बारे में भी कोई निश्चित तथ्य प्राप्त नहीं हो सका है। वह सब अभी अनुसन्धान का ही विषय बना हुआ है। कहा जाता है कि उनका मूल नाम सूरजदास था और सूरदास उपनाम। जब महात्मा वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई तब वे आगरा मथुरा के बीचों बीच यमुना के गऊ घाट पर रहा करते थे। महात्मा वल्लभाचार्य ने सूरदासजी स भगवान की लीला का वर्णन करने के लिए कहा तो सूरदासजी ने विनय के

दो पद गाये। इन पदों में भक्त का दैन्य बहुत था। वल्लभाचार्य जी को वह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने भगवान की लीला का वर्णन करने के लिये कहा। वल्लभाचार्यजी के इस प्रबोध से सूरदासजी को नवीन प्रेरणा मिली और उनकी रचना की धारा उसी दिशा में मुड़ गई।

महात्मा वल्लभाचार्यजी ने सूरदासजी को श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने का काम सौंपा। बस, यहीं कीर्तन करते करते उन्होंने हजारों गीतों की रचना कर डाली जो सूरसागर में संग्रहित किये गये हैं। कहा जाता है कि इन गीतों के कारण सूरदास जी की कीर्ति-पताका दूर दूर तक फहराने लगी। बादशाह अकबर के पास भी उनकी प्रशंसा की बात पहुँची और उसने इन्हें मिलने के लिये बुलाया। सूरदासजी ने उसे दो पद गाकर सुनाये। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों से ही यह बात मालूम होती है कि सूरदास अन्धे थे। पता नहीं वे जन्मान्ध थे या बाद में अन्धे हुए। जनश्रुति के अनुसार वे जन्मान्ध नहीं थे। उनके गीतों में रूप सौन्दर्य के जो चित्र हैं उन्हें देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे जन्मान्ध रहे होंगे।

सूरदास हिन्दी के जयदेव और विद्यापति हैं। यद्यपि सूरदास का स्वर्गवास हुए शताब्दियाँ बीत चुकी हैं तथापि उन्होंने जो कुछ गाया उसकी स्वर लहरी अब तक वायुमंडल में व्याप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे में लिखा है—"जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण

की प्रेम-लीला का कीर्तन कर उठे, जिनमें सब से ऊँची सुरीली और मधुर झङ्कार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में सूरदास के पद अपना सर्वोच्च स्थान रखते हैं। सूरदास पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने भगवान् कृष्ण की लीला का वर्णन किया था। भगवान कृष्ण के जीवन प्रसङ्गों को गीतों में ढालकर उन्होंने बड़ा ही सरस और मधुर बना दिया है। सूरदास की दार्शनिक विचारधारा वही है जो महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की थी। उन्होंने भगवान् का सगुण लीला के पद लिखे हैं।

उनकी कविता में भक्ति, वात्सल्य और शृ गार की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। वे प्रेम के कवि हैं। उनका प्रेम ही भक्ति वात्सल्य और शृङ्गार की तीन विभिन्न धाराओं में समान गति क साथ बहा है। प्रारम्भ में सूरदासजी की भक्ति दास्य भाव की थी। भगवान् को महान् और अपने को तुच्छ मानकर उन्होंने बड़ी कातर वाणी में विनय निवेदन किया था। यह भक्ति तुलसीदास की भक्ति से मिलती जुलती है। किन्तु महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से वे श्रीकृष्णजी की प्रेम लीला के गायक बन गये। उनकी दास्य भक्ति अब सख्यभाव में परिणित हो गई। सूर के विनय के पद एक आत्मविस्मृत, आत्मसमर्पित प्रेमोन्मत्त भक्त क हार्दिक उद्गार हैं। वे अपने को अधम से अधम और पापी से पापी मानकर भगवान की शरण में गये हैं।

पापी कौन बड़ो है मो त, सब पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी।

सूरदास ने कृष्ण क प्रेममय जीवन के गीत गाये हैं। वे बाल-जीवन के सर्वोत्तम गायक, कवि और चित्रकार हैं। उनके पदों में

बाल भावना, बाल रूप, बाल क्रीड़ा और बाल व्यापार का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है वह हिन्दी काव्य में ही नहीं अन्यत्र भी मुश्किल से मिलेगा। तुलसी जैसे महा कवि का बाल लीला वर्णन भी सूर के आगे निस्तेज प्रतीत होता है। सूर के चित्रण में इतनी स्वाभाविकता है कि वह आँखों में रम जाता है। उन्होंने वात्सल्य भाव के आलम्बन (कृष्ण) और आश्रय (यशोदा) के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का जो चित्रण किया है उसे देखकर बरबस यह कहना पड़ता है कि उनमें जहाँ एक बालक के हृदय का स्पन्दन है वहाँ माता के हृदय का स्पन्दन भी है।

श्रीकृष्ण के बाल्यजीवन के क्रीड़ा कौतुक के साथ-साथ उनकी युवावस्था के प्रेम-प्रणय का भी उन्होंने मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। यद्यपि इस प्रेम चित्रण के पीछे वल्लभाचार्य का भक्तिदर्शन था तथापि उन्होंने इसमें जो तन्मयता दिखाई है उससे वह एकदम नया और निराला बन गया है। कृष्ण राधा और कृष्ण गोपियों का प्रेम आध्यात्मिक अर्थ में भगवान् का अपनी शक्ति और अपने भक्तों की आत्माओं से प्रेम है। लेकिन लौकिक अर्थ में वह मानव हृदयों का ही प्रेम है। उसका चित्रण उन्होंने यथार्थवादी सचाई के साथ किया है। उनके वर्णन में शारीरिक स्पर्श अवश्य है लेकिन ग्राम्यता या अश्लीलता नहीं है। उनके विरह गीत भी हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं। उनको देखकर तो हमें मीरां की याद आजाती है। जिस प्रकार मीरां ने अपना हृदय ही पिघल कर गीतों में उंडेल दिया है उसी प्रकार सूर ने भी विरहिणी गोपिकाओं से एकरूप होकर अपने हृदय को पिघाल कर गीतों में उँडेल दिया है। सूर का एक एक विरह गीत विरह की एक एक अनुभूति, एक एक वेदना और एक एक अनुभव से व्यञ्जित हुआ है। सूर ने विरह की एक एक स्थिति को लेकर अनेक पद गाये हैं। तुलसीदास ने भी अच्छे गीत लिखे हैं लेकिन उनमें और सूर में यही अन्तर है कि सूरदास

के पास वीणा थी, तुलसीदास के पास लेखनी। सूर गायक थे, तुलसीदास कवि। तुलसीदास के पास जीवन का समूचा चित्र था, सूरदास के पास केवल प्रेमपक्ष। महान् कवि होते हुए भी तुलसीदास में गीत की वह कोमलता नहीं जो सूरदास में है। सूरदास के गीत हृदय को तडका देते थे। सूर के पदों से रस छलका पडता है।

सूरदास के ग्रन्थों में सूरसागर, सूरसारावलि और साहित्यलहरी प्रमुख हैं। उनके लगभग छः हजार पद ही अब प्राप्त हैं। उनका सारा काव्य मुक्तक है। उनकी भाषा व्रज है। उसमें सरसता और व्यञ्जना के साथ साथ स्निग्धता और धारावाहिकता भी है। उन्होंने साधारण बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग किया है। फिर भी कहीं-कहीं फारसी और पंजाबी आदि के शब्दों का प्रयोग मिल जाता है। अन्त्यानुप्रास के लिये जहां तहां सूरदासजी ने शब्दों को तोडा मरोडा और उनका रूप बदल डाला है। फिर भी उनकी भाषा व्रजभाषा का उज्ज्वलतम नमूना है।

सूर का एक विरह गीत देखिये —

दिखियत कालिन्दी अति कारी

अहो पथिक कहियो उन हरिसों, भई विरह जुर कारी॥
मनु पयक ते परी धरनि धुकि तरङ्ग तलफ तनु भारी।
तट बारू उपचार चूर जल मन प्रस्वेदपनारी॥
विगलित कच कुस कास पुलिन पर पङ्क जु कज्जल सारी।
मनहु भ्रमरि मिस भ्रमति फिरति है, दिसि दिसि दीन दुखारी॥
निसिदिन चकई व्याज बकति है, प्रेम मनोहर हारी।
सूरदास प्रभु जोई जमुना गति सोई गति भई हमारी॥

३—तुलसीदास

सूरदास की भाँति महाकवि तुलसीदासजी का भी प्रामाणिक जीवनवृत्त प्राप्त नहीं है। कहा जाता है कि उनका जन्म सम्वत् १५८४ में हुआ होगा और मृत्यु सम्वत् १६८० में। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है.—

सँवत सोलह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

इसी प्रकार उनके जन्म के सम्बंध में यह दोहा प्रचलित है:—

पन्द्रह सौ चौवन बिषै, कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‌यो शरीर॥

पता नहीं ये दोनों तिथियाँ कहाँ तक सत्य हैं।

उनके जन्म-स्थान के विषय में भी यह मत-भेद है। कोई सोरों को उनका जन्म स्थान बताते हैं और कोई राजापुर को। कोई कहते हैं कि वे पैदा तो सोरों में हुए थे लेकिन बाद में राजापुर रहने चले गये थे। किन्तु इतना सत्य है कि उनका जन्म दरिद्र कुल में हुआ था। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण माता-पिता ने उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ दिया था। द्वार-द्वार भटकते और माँगते खाते ही उनका बाल्यकाल बीता था। अपने बाल्यकाल के संबंध में उन्होंने लिखा है:—

बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हों चारिफल चारिहि चनक को।

बाल्यावस्था में उनका नाम तुलाराम था, लेकिन लोग रामबोला भी कहते थे। अनुमान है कि उनके गुरु का नाम 'नरहरिदास या 'नरहर्यानन्द' होगा। कहा जाता है कि जब उनका विवाह हो गया तो वे अपनी स्त्री में बहुत अधिक अनुरक्त रहने लगे।

एक दिन जब वह बिना कहे-सुने ही अपने पिता के घर चली गई तो ये उससे मिलने के लिये रात में ही चल पड़े और बाढ़ में उन्मत्त नदी को पार कर ससुराल पहुँच गये। इतनी रात गये इनको आया देख कर पत्नी ने भर्त्सना भरे शब्दों में कहा --

अस्थि चर्ममय देह यह, तामँह ऐसी प्रीति ।
होती जो श्रीराम मँह, होती न तो भव भीति ॥

बस, ये शब्द तुलसीदासजी को चुभ गये और वे विषय वासना से विरक्त होकर साधु बन गये। तुलसीदासजी ने यद्यपि सारे देश की ही यात्रा की तथापि उनका अधिक समय काशी और अयोध्या में बीता। काशी में सवत् १६३१ में उन्होंने रामचरित-मानस की रचना प्रारम्भ की। उनके प्रबंध-काव्य में रामचरित-मानस, पार्वतीमङ्गल, जानकीमङ्गल, बरवे रामायण प्रमुख हैं, गीत काव्य में रामगीतावली, कृष्णगीतावली और विनय-पत्रिका तथा मुक्तक काव्य में दोहावली और सतसई प्रमुख हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी एक सच्चे भक्त और कवि थे। वे एक राष्ट्रीय महापुरुष और द्रष्टा थे। उनकी रचनाएं भक्ति-भावना से तो ओतप्रोत हैं ही उनमें समाज, देश और विश्व के कल्याण की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने स्वान्त सुखाय लिखा था। उनका काव्य, काव्यकला की दृष्टि से खरा होने के साथ साथ लोक-जीवन को भी ऊंचा उठानेवाला था। उनके रामचरित मानस की अनेक चौपाइयाँ एव दोहे साधारण से साधारण व्यक्ति के मुँह से भी सुनने को मिल जायेंगे। वह एक ऐसा नीति-काव्य है जो हमारे समाज को पिछली ३-४ शताब्दियों स नैतिक जीवन की दिशा दिखाता रहा है। आज रामचरित मानस हमारा प्रमुख धर्म-ग्रथ और राम का नाम हमारा तारक मन्त्र बन गया है। इस सब के मूल म तुलसीदास का पवित्र जीवन, भक्ति-भावना, कड़ी

साधना और लोक-कल्याण की जबरदस्त इच्छा थी। रामचरित मानस के रूप में उन्होंने आर्य-संस्कृति की ही प्रतिष्ठा की है। इसमें उन्होंने एक ऐसे आदर्श समाज का चित्र खींचा जो हमारी संस्कृति का सब से सुन्दर और सब से सच्चा स्वरूप है।

परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों से लेकर राजा प्रजा तक के सम्बन्धों का एक आदर्श स्वरूप रामचरितमानस में तुलसीदासजी ने खींचा है। एक ओर समाज की बुराइयों को अपने नग्न रूप में प्रस्तुत कर दूसरी ओर उन्होंने उसे मिटाने की जबरदस्त प्रेरणा और बल भरने का भी प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति के गायक, लोकनायक और लोक नीति के प्रतिष्ठाता के रूप में उनकी ख्याति भारत ही नहीं विश्व के साहित्यकारों में अजर अमर रहेगी।

हिन्दी साहित्य में वे बेजोड़ और बे-मिसाल हैं। यदि उनकी कोटि में किसी को रखा जा सकता है तो वह सूरदास को। दोनों ही रससिद्ध कवि और उच्चकोटि के भक्त हैं। दोनों ही सगुण साकार ब्रह्म के उपासक, गायक और कवि हैं। सूरदास कृष्ण-काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं तो तुलसीदास राम-काव्य के। किसी भावुक कवि ने यमक के लोभ से ही 'सूर सूर तुलसी ससि, उड़गन केशवदास' कह कर सूरदास को सूर्य और तुलसी को चन्द्रमा कह दिया है, किन्तु वास्तव में तो काव्य-जगत् के सूर्य तुलसीदास ही हैं। सूर ने जीवन के प्रेम पक्ष को ही देखा और कविता में चित्रित किया लेकिन तुलसीदास ने तो जीवन का एक-एक पक्ष अपनी प्रतिभा से जगमगा दिया है। सूरदास केवल प्रेम के, सौंदर्य के कवि हैं किंतु तुलसीदास सौंदर्य के साथ-साथ सत्यं और शिवं के भी कवि हैं। तुलसी का कवि-कौशल चरम सीमा पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। उन्होंने राम-कथा के माध्यम से एक ऐसे जीवन

का इतिहास लिख दिया है जो युगों तक मानव समाज को आलोकित करता रहेगा।

तुलसीदास ने उस समय प्रचलित काव्य की तीनों शैलियों को अपनाया। प्रबन्ध काव्य की शैली में उन्होंने रामचरितमानस, बरवै रामायण, जानकीमगल, पार्वतीमगल आदि की रचना की। गीति काव्य शैली में उन्होंने विनय पत्रिका, रामगीतावली, कृष्ण गीतावली आदि की रचना की तथा मुक्तक काव्य शैली में कवितावली, दोहावली वैराग्य सन्दीपनी आदि की। इन तीनों शलियों पर उनका जबरदस्त अधिकार उनकी उच्च कोटि की प्रतिभा का परिचायक है। उन्होंने सभी रसों के चित्रण में सफलता प्राप्त की है। उनका प्रकृति वर्णन भी बडा सजीव और प्रेरक है। उन्होंने यद्यपि अवधी भाषा में रामचरितमानस की रचना की है तथापि ब्रजभाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार है। इस प्रकार क्या कला पक्ष और क्या भाव पक्ष दोनों ही क्षेत्रों मे उनकी समान गति है। दोनों को उन्होंने अपने पावन स्पर्श मे जगमगा दिया है। उनका एक गीत देखिये —

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।
लगी न सङ्ग चित्रकूटहि ते ह्या कह जात बह्यो।
पति सुरपुर, सियराम लखन बन, मुनि व्रत भरत लह्यो॥
हौ रहि घर मसान पावक ज्यों, चाहति मृतक दह्यो।
मेरोहि हिय कठोर करिबे कँह, विधि कँह कुलिप रह्यो॥

४—मीराँ बाई

मीराँ बाई चोकडिया मेडता क राठौड दूदाजी के पुत्र रत्नसिह की पुत्री थी। इनका जन्म सवत् १५५५ माना जाता है। इनका विवाह मेवाड के वीर सीसोदिया राणा साँगा क पुत्र भोजराज के

साथ हुआ था। लेकिन वे तो कृष्ण के रङ्ग में रङ्ग गई थीं। उन्हें ही अपना पति-प्रभु सर्वस्व—मान चुकी थीं। अतः कृष्ण-भक्ति में ही तल्लीन रहती थीं। राणा ने गृहस्थी के कामकाज में प्रवृत्त करने के लिये काफी प्रयत्न किया, कष्ट भी दिया लेकिन सब निष्फल। राणा के भेजे हुए साँप मीरा के गले में हार बन गये और जहर का प्याला अमृत। कुछ समय बाद जब राणा की मृत्यु हो गई तो रहा सहा बन्धन भी समाप्त हो गया। वे मुक्त रूप से भक्ति-वैराग्य और ज्ञान की त्रिवेणी में स्नान करने लगीं। उस युग के सभी महान् भक्तों और सन्तों के सम्पर्क में वे आईं। तुलसीदासजी से मिली थीं और कहा जाता है कि भक्त रैदास तो इनके गुरु ही थे। उन्होंने स्वय भी अपने एक पद में लिखा है—

'गुरु मिलिया रैदासजी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।'

कहते हैं कि इन्होंने अपनी पारिवारिक समस्या तुलसीदासजी को एक पत्र द्वारा लिख भेजी था। तुलसीदासजी ने उनके उत्तर में इनको लिखा था—

जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितनि, भये मुदमङ्गलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा, आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्राण से प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

यह भी कहा जाता है कि वे द्वारिका चली गई थीं और अन्तिम समय तक वहीं रहीं। वहाँ रणछोडजी की पुजारिन बन गईं और अन्त में उन्हीं की मूर्ति में समा गईं।

मीराँ वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय के सूरदास, कुम्भनदास, परमानददास आदि कृष्ण भक्त कवियों में तो नहीं थीं तथापि प्रणय निवेदन में उनसे किसी प्रकार कम नहीं थी। मीराँ पर कबीर, दादू, रैदास आदि निर्गुण सन्त कवियों की वाणी का काफी प्रभाव था।

मीराँ कृष्ण की भक्त थी। यद्यपि उनका विवाह राणा के साथ हुआ था तथापि उन्होंने अपने प्राणों में तो कृष्ण को ही बैठा रखा था। वही उनका पति और सर्वस्व था—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥

जब लौकिक दृष्टि से वे विधवा हो गई तब भी वे अपने को विधवा नहीं मानती थीं। उनकी उपासना माधुर्य भाव की थी। वे कृष्ण की पति या प्रियतम के रूप में आराधना करती थी। यही कारण है कि उनके गीतों में विरह की वेदना और प्रेम की पीड़ा बड़ी तीव्र है। वे भगवान के प्रति अपने प्रेम को लौकिक प्रतीकों के द्वारा ही व्यक्त करती थी। उनकी विरह वेदना यद्यपि उस परोक्ष सत्ता के प्रति ही निवेदित है तथापि उसमें लौकिक तीव्रता है। मीरा भक्त अवश्य थी लेकिन तुलसी और सूर की तरह भगवान की दास या सखा बननेवाली नहीं थी। उन्हें तो अपने प्रभु की प्रणयिनी बन कर रहना ही ज्यादा पसन्द था।

मीरां के विरह गीतो में ऐसी करुणा है जो पत्थर के प्राणों को भी पिघला देती है। उनकी कविता अनुभूति की कविता है, हृदय की कविता है। वह जितना ही सरल है उतनी ही मर्मस्पर्शी हैं। उनके प्रेम में जो मर्मस्पर्शी वेदना है, हृदय में जा विकलता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी। वह कविता के रूप में गानेवाली गायिका है, विरहिणी है, राधा है। राधा उसकी भक्ति का

आध्यात्मिक आदर्श है उसकी भक्ति में प्रणय की सभी अनुभूतियाँ समा गई हैं। उनकी कविता कल्पना का विलास नहीं। वह तो यथार्थ की अनुभूति से प्रतिध्वनित है। इसमें अनन्य प्रेमासक्ति है।

मीरा के गीतों की भाषा राजस्थानी है। राजस्थानी भाषा वीर काव्य की भाषा रही है। लेकिन मीरा की मधुर कोमल भावना ने भाषा को भी अपने अनुरूप बना लिया है। वह नारी थी, अत. नारी स्वभाव के अनुरूप उनकी कविता में सरसता और सरलता का सागर लहराता हुआ दिखाई देता है। गुजरात में जाकर रहने से उनके गीतों पर गुजराती का भी प्रभाव पड़ा है। मीरा का एक पद देखिये—

म्हा गिरधर रग राती, सैया म्हा
पचरग चाला पहरया सखी म्हा, झिरमिट खेलन जाती।
वा झिरमिट माँ मिल्यो सावरो, देख्या तण मण राती।
जिणरो पिया परदेस बस्योरी लिख लिख भेज्या पाती।
म्हारा पिया म्हारे हीवडे बसता आवा णा जाती।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवा दिण राती।

४—केशवदास

महाकवि केशवदास का जन्म स० १६१२ में ओरछा के पास किसी ग्राम में हुआ था। वे सनाढ्य जाति क विद्वान पडित काशीनाथ क सुपुत्र थ। काशीनाथजी सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे और उन्होंने शीघ्र-बोध की रचना की थी। उनक कुल के सभी लोग सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। अत हिंदी बोलना भी उनके वश में तुच्छ बात मानी जाती थी —

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास ॥

केशवदासजी ओरछा (बुन्देल खण्ड) निवासी थे। मधुकर शाह के पुत्र दूल्हराय के भाई राजा इन्द्रजीतसिंह के वे आश्रित राजकवि थे। राजा इन्द्रजीतसिंह ने इनका बड़ा मान सम्मान किया था। इन्हें उनसे २२ गाँव जागीर में मिले थे। उनकी समृद्धि की झलक इस छन्द में दिखाई देती है —

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग,
केशोदास जाके राज राज सो करत है।

केशवदास राजा इन्द्रजीतसिंह के तो राज कवि थे ही, वीरसिंह देव सम्राट जहाँगीर और बीरबल के भी कृपापात्र थे। वीरसिंह की प्रशंसा में उन्होंने 'वीरसिंहदेव चरित' तथा जहाँगीर की प्रशंसा में जहाँगीर जस चन्द्रिका' की रचना की थी। कहते हैं कि इन्हें पुरस्कार के रूप में अपने आश्रयदाताओं से जितना रुपया मिला था उतना उस समय के किसी भी कवि को नहीं मिल पाया था। कहा जाता है कि उन्हीं के प्रयत्न से बीरबल ने अकबर द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर किये हुए एक करोड़ रुपये के जुर्माने को माफ करवा दिया था। बीरबल ने इन्हें विपुल धनराशि दी थी। इन्द्रजीतसिंह तो इन्हें अपना गुरु मानता था। उसी के लिये इन्होंने कविप्रिया लिखी थी। ये बड़े रसिक व्यक्ति थे। बुढ़ापे पर पश्चात्ताप करते हुए इन्होंने लिखा है —

केशव केसनि अस करि, जस अरिहूँ न कराहि।
चन्द्र वदनि मृग-लोचनी, बाबा कहि कहि जाहि ॥

केशवदासजी के लिखे हुए ग्रन्थों में रतन बावनी, रसिक प्रिया, कवि प्रिया, राम चन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित, विज्ञान गीता और

जहाँगीर जस चन्द्रिका प्रमुख है। रतन बावनी प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। रसिक प्रिया और कवि प्रिया काव्य शास्त्र की पुस्तकें हैं जो रायप्रवीन नामक वेश्या को काव्य की शिक्षा देने के लिये इन्होंने लिखी थी। इन ग्रन्थों पर वाल्मीकि रामायण, प्रसन्न-राघव, हनुमान्नाटक आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रामचन्द्रिका में रामचरित मानस की भाँति रामचन्द्र के जीवन की कथा लिखी गई है। काव्य कला और पाण्डित्य की दृष्टि से केशवदास बेजोड़ हैं। उनके संवाद सचमुच बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। लेकिन उनमें हृदय तत्त्व की प्रधानता नहीं है। बुद्धितत्त्व की अधिकता से उनके काव्य में अच्छी सरसता नहीं आ पाई है।

उनकी भाषा क्लिष्ट और संस्कृत गर्भित है। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे पूरा का पूरा वाक्यांश संस्कृत का ही आ गया है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। उन्होंने संयुक्ताक्षरों का भी प्रयोग किया है और लघु को दीर्घ तथा दीर्घ को लघु करके शब्दों को तोड़ा मरोड़ा भी है। किन्तु कुल मिला कर उनकी भाषा साहित्यिक, रोचक और माधुर्यपूर्ण है। उनके कथोपकथन तो सचमुच बड़े सुन्दर हैं। वे नाटकीय शैली में लिखे गये हैं। जहा तक छन्द और अलकारों का सम्बन्ध है केशवदासजी का इन पर असाधारण अधिकार है। रामचन्द्रिका में तो उन्होंने छन्दों को बार-बार बदला है। इसी प्रकार अलकारों का भी प्रयोग उन्होंने बहुत किया है। इससे उनकी कविता अनेक स्थानों पर अलकार और छन्दों के बोझ से दबती हुई प्रतीत होती है। यह देख कर कुछ लोग तो कहते हैं कि रामचन्द्रिका छन्दों का अजायबघर और अलकारों की प्रदर्शिनी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि केशवदासजी कलापक्ष के आचार्य हैं। किन्तु उनकी कविता में प्रकृति चित्रण तथा मानव जीवन के

अध्ययन का अभाव अवश्य खटकता है। यदि बुद्धितत्त्व के साथ हृदयतत्त्व का भी मेल बैठता तो उनकी समता करने वाला कठिनाई से ही मिलता। उनकी कविता का एक उदाहरण देखियेः—

> कुन्तल ललित नील भ्रकुटी, धनुष, नैन,
> कुमुद कटाच्छ बान सबल सदाई है।
> सुग्रीव सहित तार अङ्गदादि भूषनन,
> मध्यदेश केशरी सुजग मति भाई है॥
> विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल,
> ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है॥
> रामचन्द्रजू की चमू राज श्री विभीषण की
> रावण की मीचु दर कूच चलि आई है॥

शब्दार्थ

कबीर-वाणी

१ साखी-सार

सतगुरु = साधक को उचित मार्ग पर चलाने वाला पथ-प्रदर्शक गुरु। उपगार = उपकार। उघाड़िया = खोल दिए। सूरिवो = शूरवीर। सबद = शब्द, उपदेश। भैं = भूमि। छेक = छेद। मेल्ह्या = मार दिया। उनमनी = मनमनी, उदास, हठयोग की एक क्रिया। भिद्या = प्रवेश होगया। दीपक = ज्ञान। अघट्ट = अटूट। बिसाहुणां = क्रय-विक्रय। हट्ट = बाजार। निरंध = अंधा, अज्ञानी। सिषही = शिष्य में। आकार = शरीर। आपा = अपनत्व, अहं। रीझिकरि = प्रसन्न होकर। परसग = ब्रह्म से साक्षात्कार होने का उपाय। बनराइ = शरीर का बाह्य भाग। तूं तूं करता = राम को स्मरण करते। हूं = अहं। वारी फेरी = कई बार। तूं = पर ब्रह्म। साव = स्वाद। कुंज = क्रौंच पक्षी। कुरलिया = कुररी, पक्षी। ऊभी = खड़ी हुई। पथसिरि = मार्ग के किनारे। अंदेसड़ा = चिन्तायें। आपिमी = जाता है। नाउँ = नाम। करक = हड्डि। भुवगम = भुजंग, सर्प। बिरोगी = वियोगी। बौरा = बावला, विमुख। लोही = रक्त। जलहरि = तालाब, हरि रूपी जल। उनमान = अनुमान। बास = निवास। लुबधिया = लुब्ध, लालायित। मैं = अहं। अनहद = अनहदनाद, ब्रह्म ज्ञान होने पर साधक को ब्रह्मांड में एक प्रकार की ध्वनि सुनाई देती है उसे अनहदनाद कहते हैं। उपजैं = उत्पन्न होना। अविगति = निराकार ब्रह्म। आकासे = शून्य में। औंधा कुंआ = सहस्त्रार चक्र, शरीर में स्थित सब चक्रों में शीर्ष चक्र। पाताले = मूलाधार चक्र। पनिहारि = कुन्डलिनी। हंसा = आत्मा। आकासे मुखि-ओंदि बिचारि = शून्य (आकाश) में औंधा मुख किए सहस्त्रार चक्र रूपी कुंआ है। उस कुएं की पनिहारिन

मूलाधार में स्थित कुन्डलिनी है। उस सहस्रार चक्र रूपी कुएं का पानी कोई जीव मुक्त आत्मा ही पी सकती है।। कलाल = मदिरा बचने वाला दुकानदार। दुलभ = दुलभ। रसाइए = रसयुक्त वस्तुएँ।

२. पद संग्रह

(१) घट माहिं = शरीर में। अनहदतूर = अनाहत ध्वनि।

(२) घर घर दीपक बरै = प्रत्येक घर मे दीपक जलता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति क भीतर भगवान की ज्योति है। जम फंद = यम का फन्दा। हजूर = भगवान। दिच्छा = दीक्षा, शिष्य को मंत्र देना। घालि है = चौपट करेगा। पाहन = पत्थर।

(३) सत्त प्रम = वास्तविक प्रेम।

(४) रहीन अपार = अनन्त काल के लिए रहना। पुरइनि = कमल का पत्ता। पसारा = विस्तार।

(५) इस पद के पखेरू और पछी शब्द जीवात्मा (हल) के वाचक हैं। सध = सधान, खोज, परिचय। दुर्म = द्रुम, पेड, यहा मनुष्य के शरीर से मतलब है। मरम = रहस्य।

(६) सुरत कलारी-विनतोले = सुरति रूपी कलारी (मद्य बेचने वाली) ने मत्त होकर बिना तौले ही बहुत पी लिया। तिल ओले = तिल की ओट मे।

(७) काया = शरीर। सोधो = बुद्धि। बटरा = बटवृक्ष। निरनय = निणय निश्चित। आपा = आत्मा।

(८) तरवर = ससार। मूल बिन ठाढा = बिना मूल के खडा है अर्थात् मायाजन्य है। गुरू = भगवान। चेला = जीव। रस चुन खाया = भोग भोगता रहा। अमूरत = अमूर्त रूपहीन।

(९) सुरत डोर = सुरति रूपी सुहागिन जहा बिना डोरी के ही पानी भरती है। मेह = आनन्द वर्षा।

(१०) गगन घटा=समाधि काल की धर्म मेघ की वृष्टि । पूरब दिस से=पूर्व जन्म के पुन्य से । मेंड सम्हारो=प्रथम रखो । दोनों मार=सुरति-निरति की वालिया ।

(११) सुरत भावरी=प्रेम की भावर जो ब्याह के समय वर-कन्या देते हैं । माभा=वस्त्र ।

(१२) को बीनें=कौन बुनेगा । पतिहाई=पतिया गई, विश्वास कर लिया । तुरिया=तुरी, कूँचा । करगहि=बुनने का स्थान ।

(१३) कद्रू=महमूजा । अहेडो=शुद्ध, अहेरी । दौं=दावाग्नि (विरहाग्नि) दाझत है=जलता है । मिरग=मृग, मन । अप्रबल=बलवान् । सलिता=नदी । समदर=भवसागर । नदिया=प्रवृत्तिया । मच्छ=जीव । रूवाँ=ऊर्ध्व ब्रह्माण्ड में ।

(१४) भेरे=मेलेपर, छोटी नाव पर, जड शरीर से तात्पर्य । अधघर=आधीधार में । बाट=मार्ग, बाह्याचार । मन्दिर=घर । रारि=चिता पर, भगवद्विरह की आग से तात्पर्य है । बिन नैनन=बाहरी आखों के अभाव में और ज्ञान-चक्षु से । लोचन अछते=बाहरी आंखो के रहते हुए ।

(१५) बेलीह=लता । बिरध=वृद्धि । दुँअग्रों=दो सिरे । पच सखि=पाच सखिया, पाच ज्ञानेन्द्रिया ।

(१६) दुद=द्वंद्व, बखेडा । बानी=वाने का । सुवा=तोता । बडाई=लम्बाई ।

(१७) बटाऊ=राही । भगाव=गहरी ।

(१८) पाच तत्त=पच तत्व ।

(१९) धूका=ध्वनि ।

(२०) पानी के घोडा=क्षणभगुर शरीर । पवन असवा=प्राण । गहरी नदिया=माया का प्रवाह। लागी आग=मोह की आग लगी हुई ।

सूर सुधा

विनय-पद

अनग=कामदेव । मीत=इन्द्रिय । अघ=पाप । सेवर=जगल मे उगने वाली घास । चोलना=चोला पहनने का वस्त्र । बिषय=भोग-विलास। पखवज=वाद्ययन्त्र। अविगत=जो जाना न जाय, अनिर्वचनीय । अन्तर्गत ही=अन्त करण मे हो । अमित=नहीं मिटने वाला, अमिट । घनी=गहरी । पदारथ=पदार्थ, वस्तुएँ । बपुरे=बेचारा । सिरानो=बिताना । जवनिका=परदा । तृपिति=तृप्ति, सतोष । नाद=सगीत । सारङ्ग=मृग। निशान=नगाडा । कुमत=बुरी बुद्धि । हरहाई=पागल, विक्षिप्त । अमारग=बुरेमार्ग । मरजाद=मर्यादा, सीमा । बिहरत=विचरण, घूमना । समदरसी=समभाव, समान दृष्टि रखनेवाल । बाधिक=कसाई, पशुओ को मारनेवाला ।

बाल-लीला

ढोटा=पुत्र । वरनि=वर्णन । पुहुपन=पुष्प । बेगिसी=शीघ्रता स, जल्दी । कमठपीठि=कछुए की पीठ । तमचुर=कुक्कुट, मुरगा । रोल=शब्द, ध्वनि । तमोल=तम्बूल, पान । तनक=तनिक । कुलहि=टोपी । मघवा=इन्द्र । अवली=समूह, झुण्ड । लुनाई=लावण्य । बिज्जु=बिजली ।अलप=कम । अनत=अन्य । अजिर=आगन । बिरूझावत=भगडना । खरकन=गायो के रहने का स्थान, बाडा । बिथुरी=बिखरी । खजन—एक पक्षी का नाम । सुलछ=सुन्दर । लुकाई=छिपना । कमीरी=घडा ।अजोरी=चमक, उजाला, चादनी । अचगरी=नटखट । उरहन=उलाहना । साटी=छोटी छडी । उए=उदित हुए । समर=कामदेव । कुरङ्ग=हिरन । वारिज=कमल । बिवि=दोनों । सारगवाहन थिर=स्थिर । बिटप=वृक्ष । विहगम=पक्षी । ब्योम=आकाश । (२५) लावनि=सौन्दर्य । निधि=भडार। निरखि=देखकर । अमित=अपार ।

सैन = संकेत । हेरन = देखता है । (२६) कटाछ = कटाक्ष । विलोकनि = देखना । मधुरी = मधुर । सुभ्र = सुन्दर । भृकुटी = भौंह । बिबि = दोनों । खौरि = तिलक । निरखति = देखने पर । अहिनी नागिन । सुधा = अमृत । मलयज = चन्दन । नभ = आकाश । सुन्दरि = नारी । (२७) पटतर = उपमान । राजिव दल = कमल पत्र । इन्दीवर = एक प्रकार का कमल । सतदल = एक प्रकार का कमल । निसि = रात्रि । मुदित = मुंदे हुये । बिकसित = खिलते हैं । अरुन = लाल । सेत = श्वेत । छिति = काला । सगम = मिलन । अवलोकनि = देखना । लोचन = नेत्र । छबि = शोभा । (२८) लोल = चचल । चारु = सुन्दर । स्रवननि = कान । ग्रहित कीन्हीं = ग्रहण की है । बदन = मुख । सुधा = अमृत । सरवर = जलाशय । मोर = मोला, भुलाना । मकर = मछली । क्रीडत = क्रीड़ा करती है । भुयगिनी = नागिन । भ्रूव = भौंह । मृगमद = किस्तूरी । लसति = शोभा पाती है । जनु = मानो । कीच = कीचड़ । रोज = कमल । जुवती = स्त्री । मृङ्ग = भौंरा । बिथुरी = बिखरी हुई । अलकैं = सिर के बाल । तनु = शरीर । तड़ाग = जलाशय । तरुनि = स्त्री । (२९) राजत = शोभा पाता है । जानु = जानु । लौं = तक । परसत = स्पर्श करता है । भुजग = सर्प । गगन = आकाश । अध मुख = नीचे की ओर मुंह करके । पहुँची = स्वर्ण, आभूषण विशेष । मुंदरी = मुद्रिका, अगूठी । पवि = पन । (३०) दुर्लभ = अप्राप्य । त्रिभग = तीन बल । जुग = दो । ठाढे = खड़े हैं । कुलिस = वज्र । भरमायो = भ्रमित करना । सुखमा = सौंदर्य ।(३१)घन = बादल । अतर = मध्य । दामिनी = बिजली । भामिनी = स्त्रियाँ । पुलिन—किनारा । मल्लिका = चमेली । मनोहर = सुन्दर । जामिनि = रात्रि । सरद = शरद पूर्णिमा । ससि = चन्द्रमा । राग = प्रेम । अभिरामिनि = सुन्दरी । मुदित = प्रसन्न । निधान = भंडार। मराल = हंस । गज गामिनि = स्त्रियाँ । मुनहि = जानते हैं । बरामिनि = स्त्री । (३२) काछे = शोभित हैं । इंदु = चन्द्रमा । जानु = घुटने । सुघट = सुन्दर । निकाई = सौन्दर्य । रभा = केला । तूल = तुल्य, समान । पीत = पीला ।

काछनी = कच्छा। जलाज = कमल। भूल = वस्त्र विशेष। छुद्रावली = घु घरू की पंक्ति। कटि = कमर। रसाल = सुन्दर। हृद = मानसरोवर। ग्रीव = गर्दन। रेत = रेत, बालुका। तरु = वृक्ष। चिवुक = ठोड़ी। अधरन = होठ। दसन = दांत दुति-चमक। बिंब = बिंबाफल। बीजु = बिजली। सुक = तोता। स्रवन = कान। कोटि = करोड़ों। कोदंड = धनुष। नीप = कदम्ब वृक्ष। सीखंड = मोर पंख। (३३) द्वै = दो। मगन = मस्त होना। हेरे = देखे। तन्मय = मस्त होना। नेरे = निकट। भटभेरे = भटकना। अवगाह = अगाध, गहरा। परे = पार होना। (३४) चूक = भूल। सवारि = बनाया। चतुराई = चतुराई। दीठि = दृष्टि। नसानी = नष्ट हुई। दुई = दोनों। उमगि = उमड़ कर। बासनी = पात्र। (३५) बूझत = पूछते हैं। खोरी = गली। पोरी = द्वार। ढोटा = पुत्र। दधि = दही। भुरई = भुला दिया। सकुच = लज्जा। मधुरे = मीठे। अतुराई = आतुर। कलह = झगड़ा। चीन्हति = पहचानती हो। सौंह = सौगंध। आगार = भंडार। नागरि = चतुर। पाठवौ = भेजूंगी।

यशोदा विलाप

(१) निधनी = निर्धन। माधो = माधव, श्रीकृष्ण। तजत = छोड़ता है। छिन छिन = क्षण क्षण। परसत = स्पर्श करता है। लाधो = मिला है। निस = रात्रि। साधो = इच्छा। (२) ठौंकि बजाय = सहर्ष। मसान = श्मशान। विदित = ज्ञात होती है। धाई = दौड़कर। अघाई = तृप्ति होगी। (३) सदेसो = समाचार। मया = कृपा। टेव = बान। भावै = भाती है। तातो = गर्म। भजि जाते = भाग जाते। रैन = रात्रि। उर = हृदय। अलक लडैतो = अधिक प्यारा। सकोच = लज्जा। (४) सींगी = एक प्रकार का बाजा। जनि = न। भोरहि = प्रात काल। पय = दूध। धैया = धाय। निठुर = कठोर। मधुपुरी = मथुरा। सोध = सभाल।

गोपी विरह

(१) परतीति = विश्वास । करनी = कार्य । कूर = क्रूर । मेचक = काला । भौवठ = छोड़ते हैं । पूल = वेदना । अड = स्थिर । (२) बेलि = बेल, वल्लरी । निरुवारों = निवारण । भई = छाया, प्रतिबिम्ब । (३) बासर = दिन । अनियारो = नुकीला । (४) दह्यो = दग्ध किया । अलिसुत = भ्रमर । जलसुत = कमल । सारंग = हिरन, मृग ।

भ्रमर-गीत

(१) कटुक = कड़वी । नैना = भव का वट वृक्ष जिसके विनिमय द्वारा नाक लिया जाता है । मुकताहल = मोती फल । (२) राची = लीन । बारक = एक बार । (३) पतूखी = पत्तासे । सिकति = बालू रेत । (३) अवन = माने की । मसि = स्याही । खूटि = समाप्त हो गई । दौ = दावाग्नि । कपाट = किवाड़ । (४) बिराति = वेदना का अनुभव करती है । सिराति = शीतलता का अनुभव । निमेष = पलभर । बिथा = व्यथा । आरति = दुख । (५) खेप = भार । फाटक = भूसा । हाटक = स्वर्ण । टहकावे = छोड़े । सवार = शीघ्र । (६) गहरु = देर । (६) पति = लजा । राँडें = विधवा । झाला = ज्वाला । कुम्हाँड़े = कुष्माड । (७) रसरीति = प्रेम । (९) सरन = मेंघों का प्रभाव । मदिरा = शराब । बिमावत = प्रसन्न करते हैं । (१०) घनसार = कपूर । दधिसुत = चन्द्रमा । कैरद = छुरी । लुजे = अंग छेदन । गुजे = गुजा फल । (११) सतत = सदैव । (१२) जुर = ज्वर । पालिका = पलंग । नूर = चूर्ण । पनारी = छोटी नाली । बिगलित = खुले हुये । कच = केश राशि । पुलिन = किनारा । (१३) पोच = डर । (१४) कैतव = छल । किंसुक = पुष्प विशेष । (१५) कोरि = भेदन करवे । (१७) विहात = व्यतीत होते हैं । हेम = बर्फ । वायस = काग । (१८) भुस = भूसा । रँगति = फिरता, सरकना । लकुट = लकड़ी । (१९) साँवरो = धूप । व्याल = पुष्प । विहंग = पक्षी । कन्दरा = गुफा । (२०) कगरी = किनारा । उमगत = उमग, उत्साह ।

तुलसी-काव्य

१. राम-कथा

बारहिं बारा = बारबार। प्रबोध = ज्ञान, संतोष। तरनी = नौका। रजनि = प्रसन्न करने वाली। कलि-कलुष = कलि के पाप। बिभजनि = नष्ट करने वाली। पनग = सर्प। भरनी = पक्षी, मोरनी। भ्ररनी = अग्नि। कामदगई = कामधेनु। तरगिनि = नदी। भजनि = दूर करने वाली। भुअगिनी = नागिन। निकदिनि = नाश करने वाली। बिबुध = पंडित, ज्ञानी। गिरिनंदिनि = पार्वती। पयोधि = समुद्र। रमा = लक्ष्मी। जम = यमराज। मदाकिनी = गगा। बिहारु = बिहार। भीम = भयकर। पालक = पालन करने वाले। कुंभज = सोखने वाले। उदधि = समुद्र। कलिमल = कलियुग। करिगन = हाथियो का समूह। केहरि = सिंह। सावक = शिशु। ब्याल = सर्प। कुग्रक = ललाट का बुरा लेख। जलधर = बादल मेघ। ग्रभिमत = वाछित फल। उडगन = तारागण। निरुपधि = नि स्वार्थ भाव। मराल = हस। कुपथ = बुरा मार्ग। कुतरक = वितण्डावाद। कुचालि = अधम ग्राचरण। ग्रनल = ग्रग्नि। मज्जहिं = स्नान। ग्रमित = बहुत बड़ी। ग्ररभा = ग्रारम्भ। दभा = मद। भावन = अच्छा लगना। बिरचेउ = रचा है। वृषकेतु = शिव। सुजस = सुन्दर यश। बरनि = वर्णन। सुकृत = उत्तर कर्म। सालि = धान। मेधा = बुद्धि। पुरइनि = कमल। मजु = सुन्दर। तडाग = सरोवर। अबँराई = आम का बगीचा। सेवार = सिवार। कराला = कठोर। सैल = पवत श्रेणी। बिसाला = विशाल, बडा। त्रयताप = तीन प्रकार के ताप दैविक, भौतिक, ग्राध्यात्मिक। उमगेउ = आन द। निकदिनि = नाश करने वाली। सुबिरति = वैराग्य। त्रासक = नाश करने वाली। बारिबिहग = जल पक्षी। भृगुनाथ = परशुराम। पुलकाहीं = आनन्दित। ग्रघ = पाप। खल = दुष्ट। हिमसैलसुता = पार्वती। गलानी = ग्लानि। सोषक = सोखना। तोषक = सतोष। बिगोइ = बिगाडना। मन्हवाइ = स्नान कराकर।

(२) सगुन-निर्गुण राम–

बुध = ज्ञानी । अगुन – निर्गुण । अरूप = बिना रूप का । अनख = अप्रसन्न । तिमिर = अंधकार । लवलेसा = तनिक । अहमिति = अहम् । विषइक = विषय से । मायाधीस = माया के स्वामी । निगम = वेद । बिनु बानी = बिना वाणी के । ग्रहइ = ग्रहण करने वाला । घ्रान = नाक ।

(३) वाल्मीकि-राम-समागम–

राजिवनैन = कमल के समान नेत्र वाला । सौमित्रि = लक्ष्मण । आयसु = आज्ञा । उदवेगु = उद्वेग, दुःख । परितोष = सतोष । भूसुर = ब्राह्मणों का । रुप् = क्रोध । तुन = तृण । कांछिअ = त्याग । बहोरी = फिर । निदरहिं = निंद्रा । मुकताहल = मोती । निवेदित = निवेदन । जेवांइ = जिमाकर । छोभ = क्षोभ । दभ = अभिमान । अपबरगु = मोक्ष । सैलु = शैल । अतिप्रिया = अनसुइया । गिरिबरहु = पर्वत को ।

(४) चित्रकूट-महिमा–

धनच = धनुष । अहेरी = शिकारी । रुचिर = सुन्दर । निकेत = पर्णशाला । मदनु = कामदेव । रितुराज = वसंत । सनमानि = सम्मान । जोहरु = प्रणाम । बराई = बचाकर । तोषे = सन्तुष्ट । विटप = वृक्ष । बयारि = वायु । कुरग = मृग । बिगतबैर = पुराना बैर । बिरेषी = देखकर । मेकलसुता = नर्वदा नदी ।

(५) राम-भरत-मिलन

महतारी = माँ । रैरें = आपके । परधानु = प्रधान । नरपाल = राजा । बिरागु = विराग । सिथिल = शिथिल । महिसुर = मुनि ।

सकोच = सकोच । निहारी = देखकर । चदिनि = चादनी । चदकर = चन्द्रमा को । मलीन = उदास । रजायसु = राजाज्ञा । छमब = क्षमा । माहुर = विष । दूषन = दोष । चारु = सुन्दर । निसील = शील रहित । निरीस = नास्तिक । निसकी = नि शक । नेवारगी = मालिक । बिलोकेऊ = निहारकर । जथारुचि = अपनी रुचि । सुसाहिबहि = सुन्दर स्वामी । खोरि = अपराध । सीव = सीमा । ग्रम्या = ग्राज्ञा । अकुलाई = ख्याल । सराहत = सराहना । प्रससत = प्रशसा करना । निसागम = रात्रि का ग्रागमन । नलिन = कमल । धुरीन = धुरंधर । नागर = चतुर । सनेह = स्नेह । कुसमय = बुरा समय । खुआरू = दुखी । प्रसार = ग्रनुग्रह । तरनिकुल = सूर्यकुल । ग्रोडिग्रहिं = रोकना । ग्रसनिहु = तलवार । पयोधि—समुद्र । पकरह = कमल । अवलब = सहारा ।

(६) राम-रावण-युद्ध

श्रमित = थकना । सजुग = सग्राम । बधेहु = मारना । निबाही = निकालना । पनस = कटहल । सिलिमुख = बाण । कसमसे = खडखडाने लगे । मारुत = वायु । तुरगा = घोडे । पबारे = छोडना । सधानि = सधान करना । प्रनतारित = शरणागत के दुख को हरने वाला । द्वौ = दो । बिचलि = विचलित । मरायल = पिटते रहे । लिलार = मस्तक । भालुपति = जामवन्त । चितइ = देखकर । लोकप = ससार । सघारेहु = सहार किया । जल्पसि — बकवास । बयरु = वैर करना । भोन = तरकस । कोदड = धनुष । सपच्छ = पख लगे हुए । बिभजि = तोडना । सरासन = धनुष । नवीने = नये । दर्पित = दम्भ से परिपूर्ण । मर्कट = बन्दर । दाप = क्रुद्ध महीधर = पहाड । घननादहि = मेघनाद । पाटल = गुलाब । कुलिस = वज्र । सायक = वाण । मनुजाद = राक्षस । उरगा = सर्प । दलमलै = मर्दन । तमकि = क्रोध से भरे । घनेरी = ग्रधिक । वपुष = देह । मुरछित = मूर्छित ।

(२) बरवै रामायण

मरकत = रत्न । मनुहरिया = निहार । बदारि = विदीर्ण । बक = वक्र । टहकु = फैलाना । अभिराम = सुन्दर । कनगुरिया = कनिष्ठिका ।

(३) विनय पत्रिका

(१) काढन = निकास । जगदव = ससार का ताप । (२) मदाकिनी-मालिनि = गगा की धारा । सुसृग = चोटी । भूरह-सुपात = श्वेत पात । अभिमत = इच्छा । निरुपाधि = बाधा रहित । (३) दीपवर = दीपक । अघ-विहग = छोटे पक्षी, पतग । दामिनी = बिजली (४) भव-नीर-नीधि = ससार रूपी समुद्र । पोच = कमजोर । घोरहर = बादल । (५) बूड्यो = डूबना । (६) ओसकनकों = ओसकण । सेन = बाज । गच-काँच = काच का फर्श । हरहु = हरना । निजपन की = अपनेपन की । (७) जीव-जडताई = जीव की मूढता । (८) नसानी = नष्ट होना, बिगडना । (९) सून्य = शून्य । तनु बिनु = निराकार । रविकर-नीर = मृग तृष्णा । (१०) काम-भुजग = काम रूपी सर्प । (११) सघाती = सहार करने वाला । (१२) पावक = अग्नि ।

मीरा पदावली

(१) लेणणा = आखा म । सुधारस = अमृत जैसा माधुर्य उत्पन्न करने वाली । राजा = शोभित है । वैजन्तीमाल = वैजन्ती नाम की माला जिसे भगवान विष्णु धारण करते है । भक्त बछल = भक्तवत्सल वा भक्तों को प्यार करने वाले ।

(२) नद नदन = श्रीकृष्ण । मोरचन्द्रिका = मोर नामक पक्षियों की पूछ पर बनी हुई नीली सुन्दर चितियो मे झलकने वाले सुन्दर चमकीले मडल

को चन्द्रिका वा चन्द्रकला कहते हैं। मकर = मगर। कुंडल ... घरई = मकराकृत कुंडलों की प्रभा कपोलों पर फैली हुई है और उन (कुंडलों) के ऊपर पड़े हुए अलकों के प्रतिम्बिब उस (प्रभा) के अन्तर्गत ऐसे जान पड़ते हैं मानों मीनों का समूह अपने सरोवर का त्याग कर मगरों से मिलने के लिए पहुँचा है। (देखो—'कुंडल झलक कपोल पर राजति नाना भांति'—नागरीदास।) नटवर ... धरया = नटों के समान काछनी काछे हुए हैं।

(३) नैंणा = नेत्र, नयन। रूंम रूंम = रोम रोम। ललक अकुलाय = पानी की गहरी इच्छा वा अभिलाषा करने लगे और बेचैन हो गए। (देखो—'ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की'—तुलसीदास।) ठाढी = खड़ी थी। पर = घर के द्वार पर। आपणे = अपने। परगासता = प्रकाश फैलाते हुए। बरजता = बार बार बरजते हैं। बोल बनाय = अनेक प्रकार के छंद कसते हैं। अटक = रोक। परहथ = पराये हाथों। सब ... चढाइ = सभी कुछ अंगीकार कर लिया वा मान लिया।

(४) कूयां = कोई भी। जूयां = देख लिया है। खूयां = खो दिया है। असुवा = अश्रु बिन्दुओं द्वारा। राजी = प्रसन्न। जगति = संसार की दशा। रूयां = दुखी हुई। हुयां = हुई।

(५) रंगराती = प्रेम में रंगी एवं मग्न। सैंयां = सखियां, प्रियतम। पंच रंग = पांच वा विविध रंगों का बना अथवा पंचतत्वों द्वारा निर्मित। चोला = लंबा वा ढीलाढाला फकीरों जैसा कुर्ता अथवा शरीर। झरमिट = झुरमुट मारने का खेल जिसमें सारा शरीर इस प्रकार ढक लिया जाता है कि कोई जल्दी पहचान न सके अथवा कर्मानुसार प्राप्त जीवात्मा की योनि का शरीरावरण धारण वा ... मा = उसी वेष में वहां उसी अवसर पर। देख्यां = देखते ही। सांवरो = श्यामसुन्दर, प्रियतम।

(६) हो = हो गई। अचाय = पीकर। सूल सेज = सूली की सेज।

(७) जोगीयाजी = योगी, प्रियतम। जोऊं = देखती हूं। चालै = चलता है, बढ़ता है। दुहेलो = विकट, दुर्गम। आड़ा = बीच बीच में बाधाओं

से भरा। प्रौघट=प्रटपट, प्रडबड। रम गया=लोगों से मिल-जुल कर फिर कहीं अदृश्य हो गया। मोमन=मेरे मनमें, मुझमें। भोली=सरल स्वभाव की ठहरी। जोवत=ढूंढते-ढूंढते। घोहा=बहुत से। बिरह बुझावण=विरहाग्नि बुझाने के लिये अन्तरि=हृदय में। तपत=ताप, ज्वाला। कै=या। कैर=और या, अथवा। नाइ=क्या। गुमा=खो दिए। आरित=आर्त, लालसा। तलफत=तड़पते हैं। प्राणी=प्राण।

(८) पाइ=पैरों। चेरी=दासी। पंडो=मार्ग। गैल=रास्ता। अगर=एक सुगन्धित द्रव्य। ढेरी=राशि।

(६) घुतारा=धूर्त। एकर सू=एक बार भी। वदीत=विदित, प्रसिद्ध। करी=की। गुदियां खोल=रहस्य का उद्घाटन करदे। ऊभी=खड़ी-खड़ी। जोऊ=देखती हू। सेली=योगियों के पहनने की एक माला या चादर। नाद=योगियों के बजाने का सींग, बाजा। बटवो=योगियों का बटुवा या थैला। अजू=अब भी। मुनी=मौनी। चढती वैस=युवावस्था। मणियाले=अनियारे, तीक्ष्ण। बिनमोल=मुफ्त में ही।

(१०) कूण=कौन सी। (देखो—भई गति साँप छछूंदर केरी—तुलसीदास) हीया मे मेरी=हृदय में स्मरण करती रहती हू। आरित=भ्रान्ति या उत्कट चाह। पाल बांधो=पाल चढाम्रो, पाल तानो। बेरी=बेडा, नाव (डिं०)। नेरी=निकट।

(११) हरिहू=हरि या प्रियतम ने ही। बुझ्या बात=कुछ भी पूछा या समझा। पड=पिंड या शरीर। पाट=परदा या द्वार अथवा घूघट। मुखां=मुख से। साझ''' परभात=सध्या से लेकर प्रभात का समय तक आ गया। अबोलणा=बिना बोले ही। बार गिणता=दिन गिन गिन कर। ललका=ललकते हुए।

(१२) करद=छुरी। बिरह मांही=बिरह की छुरी भीतर डरावनी जान पडती है। दुख्या=दुधारी या ब्याई। आरण=अरण्य या वन में। सुत मानें=बच्चड़े में। चात्रग=चातक। छानैं=छिपा हुआ, अन्यत्र।

(१३) तारी = फीकी। आदेशा = आशंका, संशय। भाभ = भाल। इकतारी = छोटा इकतारा बाजा। कवारी = क्वारी, कुमारी। तारी = ध्यान।

(१४) पोवा = पिरोती है। गणता = गिनगिन कर, देखते देखते। विहाना = बीती, बीत गई। होवा = होवे।

(१५) जिवा — जीऊं। ग्रोसद = औषधि। मूल = जड़ी। डोला = घूमती फिरी। धुन पाय = ध्वनि श्रवण करके। मिलस्यो — मिलो।

(१६) मिलण काज = मिलने के लिए। आरनि = उत्कट चाह या पीड़ा। जागी = उत्पन्न हुई। उरि = हृदय म। पलक री = क्षण भर के लिए भी आँख न लगी। भुवग = सर्प। लहरी हलाहल = विष की लहरें। उमग = आरति, लालसा।

(१७) छतिया = छाती। पठा करवत = आरी चल गई। अँण = पूरी पूरी। पेठा अँण = अत्यन्त कष्ट हुआ। मेटण = मेटने वाले। दँण = दूर करने वाले। चेण = चैन।

(१८) थाने = तुमको, तुझे। छाती = हृदय। राती = लाल लाल। न्याती = नाता वा नातेदार। मदमाती = मस्त। राती = रत, लगा।

(१९) ग्रोलगिया = परदेशी। घणरी = बादलों की। कमोदण = कुमुदनी। परण = प्रण। छाज्यो = काट दो।

(२०) दियो तिलक = तिलक लगा लिया। कूकर = कुत्ते की तरह। चडाल = क्रूर। काम चडाल = क्रूर कामनाएं मुझ कुत्ते की तरह लोभ की जजीर म बाधे रहती हैं। घट = हृदय म। बिलार देत = सदा भोग विलास के इच्छुक लोभी इन्द्रियरूपी बिलार को तृप्त करने का प्रयत्न होता रहता है। अभिमान हठरात = सदा मिथ्याभिमान के कारण गर्वीले बने रहने पर कोई प्रभाव उपदेशादि का नहीं पडने पाता। मनिया = माला के दाने। सहज वैराग्य = को आसान कर दो, वैराग्य धारण मेरे लिए कठिन न हो पावे।

(२१) चाख चाख = चख चख कर । बोर = बेर के फल । भीलणी = भील जाति की स्त्री, शबरी । कुचलिणी = मैले कुचैले वस्त्र वाली । झूठे = जूठे । प्रतीत जाण = विश्वास मानकर । रस की रसीलणी = भक्ति वा प्रेम रस का आनन्द लेने वाली थी । छिन⋯चढी = शीघ्र स्वर्ग को चली गई । हेत = सम्बन्ध । भूलणी = आनन्द करने वाली । जोई = जो कोई भी हो । गोकुल अहीरणी = गोकुल की ग्वालिन, पूर्व जन्म की गोपी, मीराँ ।

(२२) पैंडो = मार्ग । चावै = चाहती हो तो । सीस कीजे = अपने सिर को काट कर उस पर अपना आसन जमाओ । वारि फेर = चारो ओर चक्कर लगा लगा कर । अगनी कीजें = अगारे साधा करता है ।

(२३) चालां = चलो । अगम = अगम्य, परमात्मा । काल = मृत्यु । हौज = कुंड । घु घरा = घु घरूदार गहना । तोस = सतोष । औराँसू = दूसरों से । आसड़ी = उदासीन । राखड़ी = चूड़ामणि ।

(२४) अवणासी = परमात्मा । धरण = धरणी, पृथ्वी । बिच = मध्य में । हेताई = वह सभी, उतना । देही = शरीर । चहर री बाजी = चिड़ियों का खेल है । कहा = क्या । भयाँ = हुआ । भगवा पहर्‌यां = गेरुआ पहनने के । जुगत = युक्ति, ईश्वर प्राप्ति के उपाय । काट्या = काट दी । गासी = गांठ वा बंधन ।

(२५) पुन्न खूट्या = पुण्य छुटा वा खुला अर्थात् उदय हुआ । अवतार = जन्म, योनि । जात = बीतने वा नष्ट होते । वार = विलंब । जोर = प्रबल, जोरदार । अनत = अतरहित । ओखी = विकट ।

(२६) बदे = सेवक वा भक्त । बदगी = ईश्वराराधन । चार सूबो = चंदरोज के लिए अपने गुण दूसरों पर प्रकट कर ले । दाडिमदा = अनार का । मूल = मुख्य बात । भल = धोखे में आकर । वे = अरे । हजूर = सामने, दर्बार में ।

(२७) लगण=प्रेम । सुहागा=सौभाग्य का । साजा=पहन कर। बरणा णसाय=ऐसे किसी बेचारे वर को स्वीकार करना ठीक नहीं जो जन्म ले और नष्ट होता रहे। साजण सावरो=प्रियतम कृष्ण को। चुड़लो=सुहाग की चूड़ी।

केशव-काव्य

१. रामचन्द्रिका

हनुमान-दूतत्व

तम=अंधकार। धौस=दिवस। चपला=बिजली। स्यामल=श्याम वर्ण। उगिलै=उगलना। दुति=चमक। वर्षागम=वर्षा के आगमन पर। दसहू=दक्ष। मघवा=मेघ। दुन्दुभि=नगारा। सरजाल=तीरों का जाल। तरुनी=नारी। चारु=सुन्दर। सबद=शब्द, ध्वनि। अभिसारिनि=रात्रि में पर-पुरुष से मिलने वाली स्त्री को अभिसारिनि कहा जाता है। सत-मारग=उचित मार्ग। मति=बुद्धि। कलहंस=चन्द्रमा। सोधि=खोज। अवलबि=सहायक, सहारा देने वाला। हितू=प्रिय।

पकीरति=अपयश। सीतासोध=सीता की खोज। प्रबोध=ज्ञान। ल्यावाहू=लाओ। बिरमाहीं=बिरमाना। आकासविलासी=आकाश मे विलास करने वाले। जूयप जूय=झुंड के झुंड। मुदरी=अंगूठी। जीरन=जीर्ण, दुर्बल। कछु=कुछ। पंठन=प्रवेश। थापर=थप्पड़, चाटा, मार। बिलोकने=देखना। सिगरी=सम्पूर्ण। पुर=नगर। किनरी=एक जाति की स्त्रियां। किनरी=एक वाद्य यंत्र। जक्षिनी=यक्ष जाति की नारी। नगी कन्याका=नाग कन्या। हाला=मद्य। रीझिकै=मोहित होकर। मैली=मैली, गंदी। मृनाली=कमलिनी। काढि=निकालना। राकसी=राक्षसी। दुखदानी=दुःख देने वाली। अविधान=विधा-हीन। अधोदृष्टि=नीचे की ओर नजर। बावरो=पागल। निसिचर=राक्षस। बपुरा=बेचारा। पौनपुत्र=हनुमान। उपजत=उत्पन्न। खेद=दुख। भूमिभूप=पृथ्वी के राजा। परतीति=प्रतीति।

आसु अन्हवाई = अश्रुजल से नहाई। उरसीतकारि = हृदय में शीतलता उत्पन्न करने वाली। बुद्धिवंत = बुद्धिमान। बनचरी = वन के जीव। केसरी = सिंह। बासर = दिन। रन = युद्ध। बेगही = शीघ्र ही।

२. अश्वमेध की गाथ

गाथ = गाथा, कथा। अक्षत = चावल। सत्रुहंता = शत्रुओं को नाश करने वाला। चमू = सेना। गाजी = गर्जत। बाजी = शर्त। सिगरे = सबको। मन्मथ = कामदेव। जोधा = योद्धा, वीर। कोदंड = धनुष। रोष = क्रोध। तुरगम = घोड़ा। उरभयो = उछल गया। छत्री = क्षत्री। सघारि = नाश करके। ढाहि दिए = गिरा दिए। साल-समूल = जड़ सहित। भटनेरान = योद्धाओं के समूह।

कवि-प्रिया

ऋतु-वर्णन

ललित = सुन्दर। तरुवर = वृक्ष। सरिता = नदी। सुभग = सुन्दर। सरवर = सरोवर। सुक = शुक, तोता। अवनि = पृथ्वी। मकरंद = पुष्प रस। पराग = पुष्प-धूलि। बधिर = बहरा। अनिल = अग्नि। कूजत = ध्वनि। मढ़िहि = छाना। अपवर्ग = मोक्ष। रजनी = रात्रि। धूसरित = मिट्टी से सने हुए।

नखशिख-वर्णन

सोभिजनु = शोभायवान। अगुय = आगन। सदन = गृह। पूरणानुरागु = पूर्ण प्रेम। घाम = धूप, गरम। सीत = शीतल। ठाढ़े = खड़े। अंबुज = कमल। ग्रीवा = गर्दन। झाईं = परछाईं। जंत्रु = जंत्र। धनग कामदश = ताराना‌थ = चन्द्रमा। गिरा = वाणी, वचन। लोल-लोचनो = लाल नैन।

———